जैन-हिन्दू एक सामाजिक दृष्टिकोण

●

लेखक :

श्री रतन चन्द मेहता

●

© प्रकाशक :

कमला पाकेट बुक्स,
१२, शहीद भगत सिंह मार्ग, नई दिल्ली

●

मूल्य :

चार रुपये

●

मुद्रक :

दुष्यन्त प्रिंटिंग प्रेस,
जत्तीवाड़ा, मेरठ—२

जैन-हिन्दू
एक सामाजिक दृष्टिकोण

मुनि श्री सुशील कुमार जी महाराज

—रतन चन्द मेहता

कमला पाकेट बुक्स

द्वारा

विश्व धर्म सम्मेलन के लिए

प्रकाशित साहित्य :

- अहिंसा परिव्राजकः मुनि श्री सुशीलकुमार जी महाराज ३/-
- एक जीवन करोड़ तत्व ३/-
- जियो और जीने दो ३/-
- आत्म संयम ३/-
- अभय दान ३/-
- जैन धर्म ३/-
- वीतराग सन्देश ३/-

विश्व धर्म की पत्रिकायें :

सुशील समाचार	(साप्ताहिक)
विश्व धर्म	(मासिक)
कास्मिक साइंस	(अंग्रेजी)

विस्तृत जानकारियों के लिए लिखें :—

नरेश चन्द जैन

१२, शहीद भगत सिंह मार्ग,

नई दिल्ली—११०००१.

फोन : ३४५४८७

प्रकाशकीय——

परम आदरणीय प्रातः स्मरणीय मुनि श्री सुशील कुमार जी को आज समूचा विश्व भगवान् महावीर के रूप में सम्बोधित कर रहा है। और सच तो यह है कि मुनि श्री सुशील कुमार जी ने धर्म की रूढ़िवादता को तोड़कर अहिंसा और जैन धर्म को विश्वधर्म का रूप देने के लिए अपने सभी सुखों, स्वार्थों और निजी महत्व को बलिदान कर दिया। उनके गरिमामान जीवन चरित्र में जहां विश्वधर्म सम्मेलनों की घटनायें जुड़ी हुई हैं, वहां भगवान् महावीर के २५००वें निर्वाण महोत्सव पर उनके विश्वव्यापी वीतराग प्रचार से विदेशों के लोग लाभान्वित हुए हैं। उनकी धारणा हमेशा समन्वय ही रही है और भारत माता के तो वे सच्चे सपूत हैं। ऐसी स्थिति में जैन धर्म को किसी भारतीय धर्म से अलग देखना उन्हें जरा भी नहीं सुहाता। अपनी इस आशीर्वाद में धारणा के सुफल से उन्होंने प्रस्तुत पुस्तक को आशीर्वाद दिया है और ऐसी आशा व्यक्त की है कि इस पुस्तक द्वारा जैन और वैष्णव धर्म के बीच होने वाले मतभेद सदा के लिए समाप्त कर दिये जायें।

ऐसी महत्वपूर्ण प्रति का प्रकाशन करते हुए हमें गर्व अनुभव हो रहा है और हम महसूस कर रहे हैं कि मुनि श्री जी का जो वरदहस्त हमारे ऊपर है, उसकी छत्रछाया में हम यह महत्वपूर्ण कार्य कर रहे हैं।

आशा है, आपको भी यह प्रयास रुचेगा और आप निरन्तर कृपा बनाये रखेंगे।

प्रकाशक :
नरेश चन्द जैन
अमृता पाकेट बुक्स
१२, शहीद भगत सिंह मार्ग,
नई दिल्ली-११०००१. फोन : ३४५८८७

जैन दर्शन -- हिन्दू दर्शन
एक गुलदस्ता

विश्व धर्म प्रेरक मुनि श्री सुशील कुमार जी महाराज

'निव्वाण सेटठा जह सव्व धम्मा ।'

अर्थात सभी धर्मों का ध्येय मुक्ति है । भगवान् महावीर ॥

हिन्दुस्तान में पनपे सब धर्मों को हिन्दू धर्म कहना अधिक उपयुक्त है । धर्म के तीन प्रमुख तत्व होते हैं । एक उसका आराध्य भगवान, दूसरा उसका दर्शन, एवं तीसरा उसके आचरण के नियमादि । इन तीनों पर हिन्दुस्तान में पनपे हर धर्म या दर्शन पर उस काल के समय का प्रभाव है, हां दर्शन की उपलब्धि आत्म-साधना द्वारा ज्ञान के प्रकाश से सम्बन्धित है । फिर भी उस नवीन दर्शन में पुरातन की पुनरावृत्ति है और आगे विकास है । भगवान महावीर के ग्यारह गणधर थे । वे सब वेदों के प्रकाण्ड विद्वान थे । जब उन्होंने भगवान महावीर के दर्शन का विकास किया तो उसमें वेदों का निचोड़ भी निश्चित रूप से आया है, यह मेरी मान्यता है । इसलिए हम ऐसा मानते हैं कि जब-जब नये महात्मा अपना चिन्तन देते हैं तो उनका लक्ष्य उसमें कुछ जोड़ने से है और उनका लक्ष्य कभी नया धर्म या सम्प्रदाय चलाने का नहीं होता । जन धर्म की भी यही मूल बात है । किसी सम्प्रदाय विशेष में नहीं समाया है, कोई भी वीतराग वाणी में आस्था रखने वाला जैन हो सकता है ।

सैध्दान्तिक पक्ष हम लें तो हमें हिन्दू ग्रन्थों में वे सब बातें मिलती हैं जो जैनत्व के मूल तत्व में हैं, लेकिन उनका विकास जो जैन दर्शन में है, वह अन्यत्र नहीं है। अहिंसा का सूक्ष्म विवेचन जैन दर्शन में पराकाष्ठा पर पहुंच गया। कर्मवाद जैनत्व का मूल आधार है। ईश्वरवाद को वहां स्थान नहीं, यह नई विचारधारा नहीं लेकिन हिन्दुत्व विचाराधारा का विकास ही है। इसलिए जैन दर्शन व हिन्दू दर्शन एक गुलदस्ता है, विविधता में भी 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' के दर्शन हैं।

जैन धर्म के प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव का भागवत् गीता में आदीश्वर के रूप में उल्लेख है। अतः दोनों का आराध्य देव एक है, अतः दोनों प्रणालियां इस देश के आत्म-बल को जगाने में अपने-अपने ढंग से कार्य कर रही हैं। लेकिन यह दोनों दर्शन इस देश की निधि हैं और इसलिए हिन्दुत्व से पृथक नहीं की जा सकतीं।

प्रसिद्ध भागवत् पुराण में विष्णु के चौबीस अवतारों का उल्लेख करते समय उनमें ऋषभदेव भगवान् को विष्णु का पांचवां अवतार माना गया है। प्रथम मत्स्यावतार, द्वितीय कच्छप, तृतीय वराह और चौथा नृसिंह अवतार मानकर पांचवां अवतार ऋषभदेव को माना गया है। विष्णु के अवतारों में भगवान् ऋषभदेव मनुष्य अवतारों में सर्वप्रथम थे।

भगवान् ऋषभदेव का चरित्र भगवत् पुराण के पंचम स्कन्ध में विस्तारपूर्वक उपलब्ध होता है। भागवत् पुराण में यह भी उल्लेख है कि उन्हीं के चरित्र की नकल करके बाद में जैन-धर्म चला। भागवत् में उनके पुत्र भरत चक्रवर्ती को एक बहुत प्रभावशाली महात्मा बतलाया गया है। कतिपय लेखक भागवत् पुराण को हजार बारह सौ वर्ष से अधिक प्राचीन नहीं मानते, किन्तु अन्वेषकों का मत है कि यह महाभारत कालीन महर्षि

वादरायण व्यास की सवसे अन्तिम कृति है। वाल्मिकीय रामायण तथा योगवासिष्ठ को भी राम का समकालीन ग्रंथ मान कर उनको भागवत् पुराण से भी अधिक प्राचीन माना है।

वाल्मिकीय रामायण के आदि काण्ड, दशम सर्ग, अष्टम श्लोक में दशरथ द्वारा किये गये अश्वमेघ यज्ञ का विवेचन करते हुए कहा है कि—

अनाथा भुन्जते नित्यं नाथ वन्तश्च भुन्जते।
तापस भुन्जते चापि, भुन्जते श्रमण अपि॥

दशरथ के यज्ञ में अनाथ, सनाथ, तापस और श्रमण जैन मुनि सभी आहार लेते थे। ग्रहण करते थे। इस श्लोक में स्पष्टोल्लेख है कि राजा दशरथ ने अन्य साधुओं की भांति श्रमणों को भी आहार दान दिया। श्रमण का शाब्दिक अर्थ जैन तथा वौद्ध साधु ही होता है। वौद्ध लोग रामायण काल में वौद्ध साधुओं का इतना विशेष अस्तित्व नहीं मानते, अतः वाल्मिकीय रामायण के 'श्रमण' शब्द का अर्थ केवल जैन-साधु ही युक्ति संगत हो सकता है। अतः भगवान राम के समय में भी जैन धर्म का अस्तित्व पूर्णरूपेण स्वतः ही सिद्ध है। इससे निर्विवाद यह माना जा सकता है कि हिन्दू विचारधारा और जैन विचार-धारा एक सरिता से निकलने वाले दो निर्झर हैं।

'वाशिष्ट' के वैराग्य प्रकरण में तो भगवान राम स्पष्ट रूपेण जैनधर्म का वर्णन निम्नलिखित श्लोक में करते हैं—

नाहं रामो न मे वान्छा, विषयेषु न च मे मनः।
शान्तमास्थातुमिच्छामि, वीतरागो जिनो यथा॥

अर्थात् मैं राम नहीं हूँ, मेरे अन्दर कोई इच्छा नहीं है। विषयों में भी मेरा मन नहीं है। अब तो मैं वीतराग जिन के समान शान्त बन जाना चाहता हूँ। भगवान् राम के समय से जैनधर्म के अस्तित्व को प्रस्तुत करने वाला कितना सबल और सुन्दर निदर्शन है।

इसके अतिरिक्त वेदों के अनेक मंत्रों में भी जैन तीर्थंकरों का नामोल्लेख स्पष्ट रूपेण उपलब्ध होता है। यजुर्वेद में भी भगवान् अरिष्ट नेमी को देव रूप में मानकर उनसे निज कल्याण की कामना की है।

स्वस्ति नः इन्द्रो वृद्धाश्रवाः, स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः, स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥
यजुर्वेद, अध्याय २५ अध्याय १९।

यहां पर (वृद्धश्रवाः) कीर्तित या प्रतिज्ञाधारक जैन श्रावक हो सकता है। इन्द्रदेव (नः) हमारे लिए कल्याण को (दधातु) स्थापित करें और (पूपा) पुष्टि करता सूर्य देव (विश्ववेदाः) सर्वज्ञाता (नः) हमारे लिए कल्याण को धारण करें। (तार्क्ष्यः) तेजस्वी (अरिष्टनेमिः) भगवान् अरिष्टनेमि हमारे लिए कल्याण करें आदि अर्थ हैं। आधुनिक अर्थकर्ता इस शब्द का यौगिक अर्थ अरिष्टों का नियमन करने वाला करते हैं जो कि युक्ति संगत नहीं बैठता। इन समस्त उदाहरणों से हिन्दुत्व और जैनत्व क्षीर दुग्ध एकता का प्रबल रूप हमारे सामने हैं।

प्रस्तुत पुस्तक "जैन हिन्दू एक सामाजिक दृष्टिकोण" में यशस्वी लेखक श्री रतन चन्द मेहता का यह प्रयास प्रशंसनीय है। पुस्तक का अर्थ इति अवलोकन करने से सृजनशीलता

उभर कर आती है, जो अनेक दृष्टियों से सुन्दर है। भावात्मक और कलात्मक रूप दृष्टि से पुस्तक छोटी होते हुए भी हिन्दुत्व और जैनत्व के एकता के विषय में महान है। प्रत्येक मनुष्य अपनी उदात्त एवं मौलिक अन्तरदृष्टि के कारण स्वतः ही अपने कीर्तिमान स्थापित करने में सफल हो जाता है। ऐसी मेरी मान्यता है कि वास्तव में उदार और मौलिक दृष्टि से अवलोकन किया जाये तो जैन धर्म और वैष्णव धर्म भारतीय समाज की अटूट कड़ियां मानी जा सकती हैं। मूलतः इनमें कुछ भी भेद नहीं है, भेद का क्षेत्र सदैव सीमित होता है और अभेद का क्षेत्र अपरिमित होकर विराट् जन-मानस को सम्मोहित कर लेता है। यही रहस्य पुस्तक में उद्घाटित करने का उपक्रम लेखक ने किया है।

—मुनि सुशील कुमार

वैद्य विष्णु कुमार शास्त्री   बड़नगर
आयुर्वेद रत्न   दिनांक २७/७/७४
आयुर्वेदभूषण, न्यायभूषण

हिन्दू, यह कोई धर्म या सम्प्रदाय नहीं है, यह तो भौगोलिक दृष्टि से अर्वाचीन नाम है, प्राचीन नाम भारत है।

भारतीय धरातल पर शैव, वैष्णव, शाक्त, जैन, बौद्ध, सिक्ख आदि धर्म फले फूले हैं और इन सबको हिन्दुत्व अपनी बांह में समेटे है।

दृश्य के चिन्तवन से विज्ञान व अदृष्य के चिन्तवन से दर्शन की उत्पत्ति होती है और विकास होता है। भारतीय दर्शन या हिन्दू दर्शन में पदार्थों का अनेक प्रकार से विचार या ऊहापोह किया है, किन्तु इन सब चिन्तन को छः दर्शनों में समावेश कर दिया गया है। छः दर्शनों में जैन दर्शन भी है।

विविध दृष्टिकोण से विविध अपेक्षा से दर्शन शास्त्रों में पदार्थों का विचार किया और जैन दर्शन में उन सबका समन्वय किया, दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि सब दर्शनों को यदि इकट्ठा कर दिया जाये तो यह जैन दर्शन ही कहलाएगा।

अतः जैन दर्शन या जैन धर्म हिन्दुत्व से पृथक नहीं है।

वैद्य विष्णुकुमार
बड़नगर

स्वामी रामतीर्थ

श्रीमद्भगवद्गीता, ऐसे विश्वमान्य ग्रन्थ पर आस्था रखने वाले सभी मानव यह जानते हैं कि जब-जब बौद्धिक सिद्धान्त अर्थात् धर्म की अवहेलना मनुष्य करने लगता है, और सिद्धान्त विहीन, धर्म-विमुख जीवन व्यतीत करने लगता है तब-तब सर्व-व्यापक-चेतन-सत्ता जिसे भक्त हृदय भगवान् कहता है, तत्कालीन परिस्थिति एवं मानव-मनः स्थिति के अनुसार अनेकों रूपों में प्रकट होकर लोगों का पथ-प्रदर्शन करती है।

यदा-यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत,
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानम् सृजाम्यहम्।
परित्राणाय साधूनां विनाशायद दुष्कृताम्
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे-युगे ।

—गीता

जब-जब होई धर्म की हानी,
बाढ़हिं असुर महा अभिमानी।
तब-तब प्रभु धरि विविध सरीरा,
हरहिं कृपानिधि सज्जन पीरा।

—रामायण

मनीषियों का अनुभव एवं शास्त्र की सहमति है कि सत्व, रज और तम के व्यापार का ही नाम संसार है। इन्हीं तीनों गुणों की अधिकता और न्यूनता पर ही सत, त्रेता, द्वापर और कलियुग का अस्तित्व है। सत्वगुण के विकास से बुद्धि में प्रकाश बढ़ता है। प्रकाशवान बुद्धि ही सत्य-असत्य का विशुद्ध निर्णय देती है। ऐसी बुद्धि वाला मनुष्य असत् का त्याग कर सत् की ओर गतिशील रहता है। समष्टि में जब ऐसी परिस्थिति और व्यष्टि में जब ऐसी मनः स्थिति होती है तब सत्ययुग की प्रवृत्ति

मानी जाती है। रजोगुण और सत्य की कमी से कर्म का आत्र.षण तीव्र हो जाता है। परन्तु सत्त्व के अंश की विद्यमानता से कर्मलिप्सा होते हुए भी प्रत्येक क्रिया का समन्वय भगवान के साथ हो जाता है, जिससे कर्म-कर्म न रह कर यश हो जाता है। वस यही त्रेता का स्वरूप है। जब रजोगुण से सत्वगुण बिल्कुल निकल जाता है और तमोगुण भी कुछ-कुछ आ जाता है, तब द्वापर का समय कहलाता है। रजोगुण भी जब विशेषतः समाप्त होकर तमोगुण ही जब मानव-हृदय को पूर्णतया आक्रान्त कर लेता है तब कलियुग का शासन हो जाता है। चारों ओर विरोध की भावना का साम्राज्य बन जाता है।

शुद्ध सत्त्व समता विज्ञाना,
कृत प्रभाव प्रसन्न मन जाना।

सत्त्व बहुत रज कछु रति करमा,
सब विधि त्रेता कर धरमा।

सत्त्व स्वरूप रज वहु कछु तामस
द्वापर धरम हरण भय मानस।
तामस बहुत रजोगुण थीरा,
कति प्रभाव विरोध चहुँ ओरा।

कहने का अभिप्राय यह है कि मनुष्यों की मनः स्थिति तथा जगत की परिस्थिति के अनुसार ही युग का स्वरूप बनता है और युग स्वरूप के अनुसार ही निराकार साकार बन कर तत्कालीन गतिविधि में परिवर्तन कर समधीन बनाता है।

अतः अवतारों के स्वरूपों में विभिन्नता और उनके द्वारा प्रकट किये गये समयानुकूल सिद्धान्तों के अनेकता भेदभावना की उत्पत्ति के लिए नहीं, अपितु विकास-क्रम से अनन्यत्व एवं अभेद

की स्थिति पैदा करने के लिए होती है।

जगद्गुरु शंकराचार्य का अद्वैत, श्री रामानुजाचार्य का विशिष्ठाद्वैत आदि सिद्धान्त देखने में एक दूसरे से भिन्न प्रतीत होते हैं और उनके अनुयायी परस्पर भेद की कल्पना कर सिद्धान्तों की पृथक-पृथक सत्ता स्वीकार कर लेते हैं, परन्तु यथार्थ के दर्शन से भेद-भावना की निवृत्ति हो जाती है और सभी सिद्धान्त एक ही भगवान् द्वारा प्रकट होने के दृष्टिकोण का निर्माण हो जाता है। त्रेता के राम, द्वापर के कृष्ण और कलियुग के बुद्ध एवं महावीर स्वामी एक ही भगवान् के समयानुकूल रूप हैं।

बड़ी ही प्रसन्नता की बात है कि जैन धर्मावलम्बी श्री रतनचंद जी मेहता, गंजबासौदा निवासी ने व्यापार-बहुल-जीवन व्यतीत करते हुए भी इस सर्वहितैषिणी समन्वयात्मक दृष्टिकोण के साथ "जैन-हिन्दू एक सामाजिक दृष्टिकोण" नामक ग्रंथमें बड़ी ही खोजपूर्ण प्रभा के साथ हिन्दू, बौद्ध और जैन धर्म की मान्यताओं पर विद्वतापूर्ण विवेचन कर इन धर्मों के बीच उत्पन्न हुई भेद की खायी को भरने का स्तुत्य प्रयास किया है।

दर्शन-शास्त्र एवं धर्म विषयक ग्रंथों के अध्येताओं के लिए एक समन्वयात्मक दृष्टिकोण देने वाले इस अनुपम ग्रंथ के प्रचार-प्रसार की शुभकामना मैं भी करता हूँ।

सत्संग भवन

सरसैया घाट

कानपुर।

१/११/७४

स्वामी रामतीर्थ

एक प्रगतिशील व्यक्तित्व "श्री रतनचंद मेहता"

प्रोफेसर कंचन कुंवर सिंह

परिचय के अपने विशाल दायरे में सम्मान और श्रद्धा की दृष्टि से देखे जाने वाले श्री रतनचंद जी मेहता, निःसन्देह उन कर्मठ, प्रखर बुद्धि और सृजनशील व्यक्तियों में से हैं, जिन्होंने अपनी मौलिक अन्तरदृष्टि से अपने कीर्तिमान स्वयं ही स्थापित किये हैं।

आपके दादा जी श्रीमन्त सेठ गुलावचन्द जी मेहता, सागर के जिले के प्रमुख रईस थे, जिनकी जमीदारी कई गांवों में थी। साहूकारी के अतिरिक्त एक कुशल काश्तकार के रूप में विख्यात आपके दादा जी संगीत, राग-रागनियों, खेल-तमाशों के प्रति एक ओर गहरी अभिरुचि रखते थे, दूसरी ओर अपने क्षेत्र की सभी रियाया के सुख-दुःख में पूरी तरह साथ निभाने की संकल्प शक्ति भी इनमें विद्यमान थी। सं० १९५६ का अकाल···देश की जनता जिस समय मृत्यु के दर्दनाक दौर से गुजर रही थी, उस समय सेठ गुलावचन्द जी ने जनता को दिये गये अपने ७५ हजार रुपये न केवल माफ कर दिये, वल्कि उन भूखे हजारों लोगों के लिए निःशुल्क भोजन की व्यवस्था भी की, जिसे आज तक वह पूरा क्षेत्र याद करता है। अंग्रेजों ने उनके इस सराहनीय कार्य पर उन्हें सम्मानित भी किया था। क्षेत्र के गरीव लोगों के लिए सदैव एक वैद्य इनके साथ रहा करता था। इनके तीन पुत्र थे। सर्व श्री मिलापचंद जी मेहता, अनूपचंद जी मेहता और सुगनचंद जी मेहता।

सागर जिले के ग्राम आगासौद में संवत् १९७० में इसी

उच्चकुल में जन्मे श्री रतनचंद जी मेहता ने इकलौती सन्तान के रूप में सभी पैत्रिकगुण विरासत में पाये। पिता श्री अनूपचंद जी मेहता जितने उदार हृदय-सौम्य, कानून और कास्त के मर्मज्ञ, दूरदृष्टा और भावुक थे, वे सारी की सारी विशेषतायें आज भी श्री मेहता में देखी जा सकती हैं।

शैशव का सीमान्त लांघते ही परिदेशानुकूल व्यायाम की तरफ इनकी गहरी रुचि उभर कर सामने आई, जिसे आने वाले २५ वर्षों तक इन्होंने विविध रूपों में संवारा-संजोया। किशोरावस्था के दौरान सन् १९३१ में इन्होंने आगासौद में ही नवयुवक सेवा मण्डल की स्थापना की और जीव दया प्रचारिणी सभा के समन्वय से गांव के विकास और समाज की प्रगति के लिए आने वाले लम्बे समय तक उन्होंने उसका संचालन किया।

अध्ययन के प्रति अपनी स्वाभाविक और गहरी रुचि के कारण बचपन से ही विभिन्न पुस्तकों का घर पर पठन-पाठन इन्होंने आरम्भ कर दिया था तथा कुछ अन्तराल से इनका ध्यान अध्ययन की एक सुनियोजित व्यवस्थानिर्माण के प्रति गया और गांव में इसकी कमी तथा साक्षरता की आवश्यकता को ध्यान में रखकर इन्होंने एक सुव्यवस्थित पुस्तकालय की स्थापना की एवं प्रौढ़ शिक्षा के विकास के लिये रात्रि पाठशाला भी प्रारम्भ की जिसे एक अभूतपूर्व शुरूआत माना गया, लोगों की सामायिक चेतना और शिक्षा को विकसित करने के क्षेत्र में...।

देश जब भी क्रान्ति की अनिवार्य भूमिका से गुजरता है, तो एक दायित्वपूर्ण, भावुक चेतनशील और आस्थावान व्यक्ति उससे सहजता उससे आन्दोलित हो उठता है। तत्कालीन

आव्हान की अपनी भूमिका को इन्होंने भी क्रान्ति के प्रति समर्पित माना और नवयुवक सेवा मण्डल के माध्यम से कांग्रेस की क्रान्तिकारी नीतियों में गहरी आस्था होने का प्रमाण जीवन के आने वाले तमाम वर्षों में प्रस्तुत करते रहे।

गांव के चिन्ताजनूय पिछड़ेपन से प्राय: चिन्तित श्री मेहता ने वहां के जन-जीवन के विकास के लिये दो अन्य संगठनों का निर्माण किया 'जीव दया प्रचारिणी सभा' जिसके अन्तर्गत दूसरों के हितसम्वन्धी रचनात्मक कार्यक्रम अपनाये गये तथा 'व्यापारिक शिक्षा संस्थान' जिसके अन्तर्गत वहां के युवकों के भावी जीवन में व्यापारिक स्तर पर विकास की दिशा में सफल बनने के लक्ष्य से इन्होंने व्यापार के अनिवार्य लक्षणों तथा उसमें प्रगति की अपनी अभूतपूर्व व्याख्या प्रस्तुत की, जिसके साक्ष्य स्वरूप इनके इन्हीं सिद्धान्तों द्वारा निर्देशित कई युवक, जिन्होंने उस समय व्यापार की दिशा ग्रहण की थी, आज नि:सन्देह एक सफल व्यापारी बन सके।

आंदोलन के देशव्यापी अनुक्रम में स्वयं समर्पित श्री मेहता ने पूरी तरह गांधीवादी विचारधारा को अपने जीवन में ग्राह्य माना और बीस वर्ष की आयु से आज तक वे उसी श्रद्धा के सहज क्रम में शुद्ध खादी का प्रयोग करते चले आ रहे हैं। स्वतन्त्रता संग्राम इनके लिये भी एक चुनौती था और उसमें सक्रिय भाग लेने का उत्साह वे रोक न सके; तथा कांग्रेस विचारधारा के समर्थन-पालन में कई वार विभिन्न कठिनाइयों और यातनाओं को सहने के वाद भी अपनी ओजस्वली लेखनी से जन जीवन में व्यापक क्रान्ति चेतना भरने की अपनी अथक चेष्टा जारी रखी। काव्यप्रतिमा प्रायोगिक को इन्होंने शोषण और

देश की स्वतन्त्रता के समानान्तर संपूर्ण सार्थकता दी और कई बार तो इनकी रचनायें सिर्फ इसलिये जप्त की गई कि उनमें अंग्रेजों के प्रति तीव्र विरोध दर्शित था।

आर्थिक रख-रखाव से दूर इन्होंने सदैव ही दायित्व की क्रियात्मक भूमिका को ही अपनाया और कहते रहे 'मैं कर्म के प्रति निष्ठावान हूँ, कार्य भर कर सकता हूँ—अर्थ (पैसे) से हाथ नहीं लगाता।' और वस्तुतः आज भी इनमें एक दुःख, इस बात का निरंतर मुखरित होता है कि आज कुछ कांग्रेस-जन अपने सिद्धान्तों की प्रामाणिक-सार्थकता के प्रति पूरी तरह ईमानदार नहीं रहे।

इसी के समानान्तर आगासौद के अपने जीवन क्रम में इन्होंने तारण तरण समाज के विकास के लिये एक सक्रिय कार्यकर्ता की भूमिका भी निभायी और इसके प्रारम्भिक पत्र-तारण वन्धु, के प्रकाशन की शुरूआत का सुझाव दिया और काफी समय तक तारण समाज के लिये लिखते रहे।

राष्ट्रीयता के प्रति गहरी आस्था और त्याग की निःश्चल भावना इनमें सदैव संचरित रही। प्रत्येक विषय और समस्या पर इनका सामयिक, विशिष्ठ और मौलिक चिन्तन क्रमशः निखरता गया और छूटता गया वह सब कुछ -जो अव्यावहारिक असैद्धान्तिक और अनुपयोगी इन्हें लगा ; ये कांग्रेस के सक्रिय सदस्य वने तो सिर्फ गांधीवादी सिद्धान्तों तक स्वयं को सीमित रखा और उसको वाह्य स्वार्थपरक अभिसंधियों से सदैव दूर रहे—

'चाह नहीं चार आने देकर,
अपना नाम लिखाऊं मैं।

चाह नहीं खादी अपनाकर,
देश भक्ति जतलाऊं मैं।

चाह यही स्वीकार करो,
गांधी मुझको चरणों का दास।

अपना जीवन सफल बनाने,
पड़ा रहूँ मैं तेरे पास।'

(लेखक की १६४१ की रचना)

अचानक इसी दौरान पिता की मृत्यु इन्हें व्यापक दायित्वों से और जोड़ गई तथा २८ वर्ष की आयु में पारिवारिक समस्त जिम्मेदारियों के प्रति उन्हें सचेष्ट होना पड़ा।

एक नये जीवन-क्रम का प्रारम्भ···गांव से शहर की ओर... इनकी विकासशीलता इन्हें प्रयोग के अपेक्षाकृत विस्तृत दायरे में ले आयी और छोटा-सा शहर बीना, आने वाले कई वर्षों तक इनके जीवन का महत्वपूर्ण कर्मक्षेत्र बन गया।

इनकी कार्यकुशलता तथा विविध क्षेत्रों में इनकी सक्रिय रुचि के कारण धीरे-धीरे लोग इन्हें महत्व देने लगे और सन् १६५४ में इन्हें नगरपालिका बीना का उपाध्यक्ष चुना। इससे पूर्व इन्होंने नगरपालिका के अवैतनिक कोषाध्यक्ष का दायित्व निर्वाह सफलतापूर्वक किया। इसके समानान्तर ही लोगों का विश्वास इनके प्रति बढ़ता गया। सहयोगी और निर्देशक दोनों के बीच निर्माण कार्य की गति इनमें क्रमशः तीव्र हुई और कई संस्थाओं के संचालन दायित्व का भार थोड़े ही अन्तराल से इन्हें स्वीकरना पड़ा।

१६५४ से १६५८ के ५ वर्षों के दौरान 'भारत सेवक

समाज वीना' के अध्यक्ष के रूप में इन्होंने एक संगठन को जहां व्यवस्थित, सक्रिय और सार्थक बनाने का प्रयत्न किया, वहीं 'सर्वोदय प्रचारक संघ तथा सर्वोदय भवन पुस्तकालय एवं वाचनालय' वीना के संस्थापक संचालन में भी तन-मन और धन से उपाध्यक्ष के नाते अपना अविस्मरणीय सहयोग प्रदान किया। सर्वोदय की विचारधारा से ये काफी प्रभावित हुए तथा आने वाले जीवन में समाज की प्रगति का नया दृष्टिकोण लेकर उत्तरोत्तर कार्य करते रहे··· एक निःस्वार्थ कर्मयोगी की भांति···।

जनवरी १९५६ इनकी इन्हीं सारी समकक्ष विशेपताओं के कारण सिटी कन्ट्रोल वीना का एक ओर तो इन्हें सदस्य नियुक्त किया गया, दूसरी ओर नगरपालिका के कार्यों तथा उसके आन्तरिक ढांचे को काफी हद तक सुदृढ़ बनाने की क्षमता के कारण ८ मई ५८ को ये नगर पालिका के कार्यवाहक अध्यक्ष बनाये गये जिसके दौरान दो वर्षों तक किये गये कार्य आज भी इनकी याद दिलाते हैं।

व्यापार कुशल, विनम्र और पूंजी को व्यापारिक प्रगति के लिये सर्वथा अनिवार्य न मानने वाले श्री मेहता की दक्षता बौद्धिक श्रम के सन्दर्भ में अब तक कई रूपों में प्रमाणित हो चुकी थी, साथ ही समयसमय पर इन्हें सर्व श्री मेहता नन्द–किशोर, चिरागउद्दीन मौलवी, लौकरस साहब, डा० बी० बी० राय, रामनारायण लाल जी, आनन्द मंगल मिश्र, ज्वालाप्रसाद जोशी और अब्दुल गनीम आदि तत्कालीन प्रसिद्ध व्यक्तियों एवं कार्यकर्ताओं का पूर्ण सहयोग मिला और एक सजग कार्यकर्त्ता की भांति ये निरन्तर लक्ष्य की दिशा में बढ़ते गये। याद आता

है वह अंश जो प्रमुख पत्र 'कर्त्तव्य दान' ने इनके बारे में लिखा—

'मेहता जी पुराने कार्यकर्ता हैं, आप सन् १९३२ से कार्य कर रहे हैं। आपकी लगातार भाषण शैली अत्यन्त प्रभावशाली और सबसे बड़ी विशेषता आप में यह है कि इन्होंने स्वतः के बौद्धिक परिश्रम से पूंजी एकत्र की है।'

इनके अनन्य साथियों में से इनके समय नगरपालिका अध्यक्ष श्री भैरोप्रसाद पाठक भी थे जिन्होंने इनकी क्षमता पर पूरा विश्वास सदैव व्यक्त किया। अक्टूबर १९५८ में ग्रेन मर्चेन्ट एसोसिएशन, बीना के अध्यक्ष बनाये गये तथा इस जिम्मेदारी को भी बड़े ही सूझ बूझ से इन्होंने अन्त तक निभाया।

शिक्षा और धर्म के प्रति भी इन्होंने जब-जब समय मिला अपना प्रयत्न जारी रखा और इसी क्रम में कई सनातन मन्दिरों का भी जीर्णोद्धार इन्होंने कराया जिसमें इटावा के हनूमान मन्दिर तथा मारुति मन्दिर आदि कहे जा सकते हैं। तारण तरण समाज के आयोजनों में प्रारम्भ से ही इनका विशेष सेवा कार्य आज भी लोग याद करते हैं तथा इन मौकों पर इन्होंने बहुत सी सम्बन्धित रचनाओं का भी समय समय पर निर्माण किया।

एक कांग्रेसी कार्यकर्त्ता के रूप में कई वर्षों तक अपनी निष्ठा प्रमाणित करने के फलस्वरूप इन्हें मण्डल कांग्रेस को सुदृढ़ और संगठित करने की जिम्मेदारी भी सौंपी गई तथा १९५८ में इन्हें मण्डल कांग्रेस का अध्यक्ष चुना गया। लगभग डेढ़ वर्षों तक बीना क्षेत्र में अपनी सेवायें अर्पित करने के पश्चात् यह स्थान इन्हें छोड़ना पड़ा क्योंकि पूरा सागर क्षेत्र ही

तब तक डाकुओं के आतंक से असुरक्षित हो गया था और एक नया अध्याय शुरू हुआ– श्री मेहता का...तथा शहर था गंज-बासौदा...।

जीवन की असुरक्षा से चिन्तित होकर लौटे श्री मेहता ने इस नये क्षेत्र में ३ वर्षों तक किसी भी बाह्य गतिविधियों का सूत्रपात नहीं किया। पूरी तरह यहां व्यवस्थित होने के उपरान्त इन्होंने विविध व्यापार क्षेत्रों, अनाज एवं दाल मील आदि में अपना विशेष स्थान बनाया और इनके यहां आगमन तथा विकास के सूत्राधार थे सर्वश्री मान्यवर उदयचन्द जी ओसवाल (कंवर सा०), अपनी उदार एवं मानवतावादी प्रवृत्तियों के लिये विख्यात रतनचन्द जी ओसवाल (मिट्ठू जी) तथा मदनसिंह जी एडवोकेट जिन्होंने यहां श्री मेहता की मार्गप्रसारित का सम्पूर्ण दायित्व निर्वाह किया।

बासौदा का तारण तरण समाज, जिसका एक बड़ा ट्रस्ट यहां काफी पहले से शिक्षा और धर्म के क्षेत्र में प्रसिद्ध था, एक कार्यकर्त्ता के रूप में पहले से ही श्री मेहता को जानता था और इसी कारण उन्होंने तारण तरण ट्रस्ट में इन्हें १० वर्ष पूर्व ट्रस्टी बनाया।

धार्मिक अभिरुचियों में विशेष सक्रिय श्री मेहता ने १४ जून १९६६ को जैन श्वेताम्बर श्री संघ के तत्वाधान में पार्श्वनाथ भगवान् की प्रतिष्ठा के महोत्सव का संचालन एक अध्यक्ष के रूप में किया और श्वेताम्बर समाज को संगठित करने की पहल की।

इसके साथ ही प्रारम्भ से रामायण मण्डल में अपना पूर्ण

१६६० को किये गये अखिल भारतीय मानस ज्ञान यज्ञ महोत्सव के आयोजन के श्री मेहता अध्यक्ष रहे। इस यज्ञ में अनन्द श्री विभूषित जगत्गुरू शंकराचार्य जी, श्री कृष्ण बोधाश्रम जी महाराज तथा श्री कुशल जी आदि प्रकाण्ड विद्वानों की ज्ञानगंगा का रसास्वादन इन्होंने असंख्य नर-नारियों को कराया।

दूसरा प्रमुख कर्मक्षेत्र था शिक्षा...। बासौदा जैसे शहर में लम्बे समय से अनुभव की जा रही उच्च शिक्षा की कमी से प्रभावित होकर श्री मेहता ने जनता के सहयोग से एक महा-विद्यालय की स्थापना की और उसका नाम रखा गया "श्री तारण तरण दिगम्बर जैन महा विद्यालय।" १९६४ में स्थापित इस महाविद्यालय को कुछ समय पश्चात जब शासन द्वारा अपने नियंत्रण में लेने का प्रश्न आया तो अन्य कुछ लोगों की राय के विपरीत श्री मेहता ने इस बात पर बल दिया कि यदि महा विद्यालय को हम सबसे अधिक व्यवस्थित और नियमित रूप से शासन चला सकती है तो हमें शासन को इसे सौंप देना चाहिए क्योंकि हमारा मूल लक्ष्य इस क्षेत्र में उच्च शिक्षा को सुचारु रूप से संचालित करने का है, इसमें किसी के निजी श्रेय का कोई विशिष्ट अर्थ नहीं। और इस प्रकार यह संस्था विधि-वत शासन को सौंप दी गई।

सन् १९६६ में विधि अध्ययन को लेकर आपने एक नये महाविद्यालय की पुनः नींव रखी और उसका बड़ा ही भावात्मक कारण रहा। तत्कालीन प्रधानमंत्री स्व० लाल बहादुर शास्त्री की अकस्मात मृत्यु का दुखद समाचार जब यहां प्राप्त हुआ तो उनके कनिष्ट पुत्र भी कवि सम्मेलन के सन्दर्भ में बासौदा में उपस्थित थे और इसी सन्दर्भ में बाद में यह निर्णय लिया गया

कि स्वर्गीय श्री शास्त्री जी की स्मृति में एक महाविद्यालय की स्थापना की जाये।

इस समय तक शासन की जिले एवं नगर वन्दी की अनाज वन्दी की आक्रामक की नीतियों के कारण विवशत. अपना समस्त अनाज व्यापार एवं दाल मील को भी मेहता वन्द कर चुके थे और इसी कारण माननीय श्री तखतमल जी और श्री रतनचन्द जी ओसवाल तथा उनके अन्तरंग साथियों द्वारा जब महाविद्यालय के प्रारम्भ की चर्चा आई तो व्यापार से सुरक्षित बचे २५ हजार रुपये सहर्ष इस सदुपयोग के लिये श्री मेहता ने स्थायी सुरक्षानिधि के रूप में प्रदान किये, जिसे विश्वविद्यालय में जमा किया गया और परिणामस्वरूप वासौदा शिक्षा समिति के तत्वावधान में श्री लाल वहादुर शास्त्री महाविद्यालय का विधिवत् शुभारम्भ जुलाई १९६६ से हो सका। इसी सत्र से नन्हे-मुन्हे वच्चों की प्रायोगिक शिक्षा की व्यवस्था भी शुरू की गयी और इसके निमित्त शिशु मन्दिर की स्थापना हुई, जो तब से निरन्तर प्रगति के पथ पर है। आज शिशु मन्दिर का एक विशाल भवन श्री मेहता के ही अथक प्रयासों का ही परिणाम है। जहां वहुत से नन्हे-मुन्हे वालक नई शिक्षा प्रणाली के अनुसार पढ़ाए जाते हैं।

सभी धर्मों के प्रति उदार हृदय श्री मेहता साम्प्रदायिकता से दूर-दूर तक अप्रभावित हैं। वासौदा में मुसलमानों का एक ऐसा मकवरा जिसे श्री मेहता ने वासौदा का ताजमहल कहा, काफी दिनों से तटस्थ पड़ा हुआ था। उसके विकास के लिए भी

प्रतिवर्ष उर्स लगा करता है। उनकी यह भावना उनके द्वितीय पुत्र डा० महेन्द्र प्रताप मेहता के विवाह के अवसर पर प्रकाशित भावनांजलि के अन्तर्गत उस पृष्ठ पर देखी जा सकती है, जहां इन्होंने वैष्णव तथा जैन मन्दिरों के साथ उस मकबरे का भी चित्र संकलित किया है।

सम्भवतः सभी धर्मों के प्रति उनके इसी समन्वित उदार चिन्तन क्रम का ही परिणाम है। यह पुस्तक जिसके अन्तर्गत उन्होंने भारतीय संस्कृति की सम्पूर्ण अर्थवत्ता में जैन और वैष्णव दोनों ही धर्मों की विशिष्ट परिकल्पनाओं को समाहित करने की मौलिक व्याख्या प्रस्तुत की है।

निःसन्देह उनके इस प्रयास के अन्तर्गत निहित चिन्तन को समस्त भारतीय चेतना और विद्वत समाज के प्रति इस अपेक्षा के साथ कि उनकी यह समन्वयात्मक कृति निश्चित ही अपना एक विशिष्ट स्थान प्राप्त करेगी। मैं अपनी समस्त अनुशंसा इस विशिष्ट योगदान के प्रति अर्पित करता हूँ।

१६ अक्टूबर १९७४ कंचन कुंवर सिंह
गंज-बासौदा (म० प्र०)

प्राक्कथन

प्रस्तुत पुस्तक "जैन-हिन्दू एक सामाजिक दृष्टिकोण" के समर्थन में एक स्पष्ट एवं संक्षिप्त परिचयात्मक प्रयास है। वस्तुतः जैन व वैष्णव भारतीय समाज के अभिन्न अंग हैं, चाहे देश-काल आदि की अपेक्षा से इनमें भेद प्रतीत होता हो, किन्तु मौलिक दृष्टि से निष्कर्षतः इनमें एकरूपता अधिक है। भेद का क्षेत्र सीमित है, जबकि अभेद एवं एकरूपता की परिधि वड़ी व्यापक और विस्तृत है। इसी परिपेक्ष्य में समन्वय के आधार-भूत कारणों को जैन और हिन्दू इन दोनों ही परस्पर भिन्न शब्दों की सार्थक एकात्मकता की खोज के सन्दर्भ में मैंने "जैन-हिन्दू एक सामाजिक दृष्टिकोण" की व्याख्या की आवश्यकता अनुभव की। एक अन्य कारण यह भी रहा कि आज जैन स्वयं को हिन्दू नहीं मानता और वैदिक धर्मावलम्बी भी यह स्वीकार नहीं करना चाहता कि जैन हिन्दू हैं, जबकि ऐसी धारणा कुछ नासमझ लोगों की ही कही जा सकती है। फिर भी यह एक ज्वलन्त प्रश्न था मेरे सामने कि क्या दोनों ही सम्प्रदाय वस्तुतः एक नहीं हैं और यह पुस्तक इसी संदर्भ–शोध–क्रम का परिणाम है।

वैसे भारतीय संस्कृति एक होते हुए भी तीन धाराओं में प्रवाहित हुई है, जिसे जैन, वैदिक और बौद्ध धारा कहा है।

जैन तथा वैदिक धर्मावलम्बी की समाज व्यवस्था में कर्म-काण्डों, आचार-विचार, रहन-सहन, वेषभूषा, कुटुम्ब, स्त्रियों का परिवार में स्थान, विवाह-पद्धति एवं गुरु तथा पुरोहित की मान्यताओं, धार्मिक विश्वासों के अन्तर्गत दान-पुण्य, व्रत-उपवास, धर्म-कर्म, कर्म-फल, ब्रह्मचर्य, गौभक्ति, पुर्नजन्म आदि सभी गुण भारतीय संस्कृति के हैं और इनकी मान्यता दोनों ही पक्षों में समान रूप से पाई जाती है। अतः भारतीय संस्कृति के स्वरूप स्वभाव और विकास की अत्यन्त प्राचीन काल से चली आने वाली धारावाहिकी जीवित परम्परा को ठीक-ठीक समझने के लिए उसके इतिहास को व्यापक रूप से जानने की आवश्यकता है।

वाहरी जातियों के आक्रमणकाल में हिन्दुस्तान की प्रभुसत्ता वैदिक धर्मावलम्बियों के हाथ में थी। इसलिये 'हिन्दू' शब्द इन्हीं के अर्थ में रूढ़ हो गया। आज इसी 'हिन्दू' शब्द के सही अर्थ को समझने और उसके व्यवहारिक प्रयोग की अधिक आवश्यकता है।

हिन्दू संस्कृति सनातन है, जिसकी अनेकानेक शाखा-प्रशाखायें वटवृक्ष के समान विभिन्न सम्प्रदायों और पन्थों के रूप में विश्व में चारों तरफ फैलती गयीं, जवकि समस्त हिन्दुओं की संस्कृति प्रत्यक्ष रूप से एक ही है। इसी कारण हिन्दू संज्ञा से विशेपित जैनियों को 'हिन्दू' कहने में गर्व का अनुभव करना चाहिए। जैन धर्म पर किसी एक जाति, समाज व संघ का अधिकार नहीं है, यह सबका है, इसे पोषित करने वाली जातियाँ और संघ अनेक हैं। जिस व्यक्ति ने जैन सिद्धान्त के अनुरूप

है। भगवान् महावीर के शासनकाल में 'हरिकेशी' जैसे चाण्डल मुनि बने और अपनी साधना के उत्कर्ष से देवताओं के पूज्य कहलाए। जैन मत बहुत प्राचीन है। अनुश्रुति के अनुसार इस मत के आदि प्रवर्त्तक ऋषभदेव थे। उनका उल्लेख, ऋग्वेद, यजुर्वेद, विष्णुपुराण, श्रीमद्भागवत आदि प्राचीन ग्रन्थों में भी मिलता है। इन्हें आदिनाथ स्वामी भी कहते हैं।

राजा भीमसेन का पौत्र और श्री गुन्ज का पुत्र उत्पल कुमार ने अपने बाहुबल और अतुल पराक्रम से ओसियानगर (जोधपुर) में अपना राज्य स्थापित किया। यह पूर्व में वंश परम्परानुसार वाममार्गी था। अन्त में यह जैनाचार्य के उपदेश से जैन धर्मी हुआ, इसके साथ ही ३६ कुल के (सवालाख) राजपूतों ने जैन धर्म स्वीकार किया।

एक राष्ट्रीयता के अन्तर्गत किसी विभिन्न संस्कृति के अविच्छन्न स्रोत के रूप में निवास करने वाले समस्त जन-समुदाय का एक सार्थक सम्बोधन राष्ट्रीयता सूचक भौगोलिक ऐसे शब्द भी हुआ करते हैं, जो उनकी समस्त विशिष्टता को विश्व की अन्य नितान्त भिन्न संस्कृतियों से अलग कर सके। इसी संदर्भ में चूंकि हम एक विशाल भारत या हिन्दुस्तान के नागरिक हैं, उनकी समग्र संस्कृति हमारी संस्कृति है, इसलिए हम हिन्दू हैं।

'हिन्दू' किसी जाति या धर्म का वाचक कभी नहीं रहा, संस्कृति के समग्र भौगोलिक परिवेश के वाचक इस शब्द 'हिन्दू' को, अतः किसी निश्चित साम्प्रदायिक से जोड़ना नितान्त द्वेषपूर्ण और भ्रामक है। साम्प्रदायिक कट्टरता से भारत का जितना अहित हुआ और हो रहा है, वह किसी से

छिपा नहीं है। इस विषैले वातावरण को समाप्त करने का प्रयत्न करते रहना चाहिए। वैदिक, जैन, बौद्ध और सिक्ख संस्कृति के समन्वय बिना आर्य परम्परा का इतिहास किन्हीं अर्थों में पूर्ण नहीं माना जा सकता।

इस स्वीकारोक्ति के उपरान्त भी कि कोई प्रयास अपने आप में पूर्ण नहीं होता, इस पुस्तक को सार्थक एवं उद्देश्यपूर्ण बनाने का भरसक प्रयास मैंने किया। पुस्तक में कई ऐसे प्रसंग आए हैं, जहां आस्था से परे बौद्धिक तर्क वितर्क के द्वारा सन्देह उत्पन्न किए जा सकते हैं या सम्भव है कई सन्दर्भों में मुझसे भी त्रुटियां बन पड़ी हों, किन्तु अन्ततः सभी बातें सबको समझ में आ जावें, यह भी तो सम्भव नहीं है।

यदि जैन व वैष्णव समाज के विद्वान इस पुस्तक के निष्पक्ष एवं आग्रहरहित अध्ययन के फलस्वरूप मेरे प्रयासों को दोनों ही सम्प्रदायों की एकरूपता के संदर्भ में अपनी थोड़ी बहुत भी स्वीकृति प्रदान कर सकें तो मैं "जैन-हिन्दू एक सामाजिक दृष्टिकोण" इस दिशा में अपने इस प्रयत्न को सफल मानूंगा। मुझे सन्तोष है कि वैष्णव विद्वान द्वारा जैनियों को हिन्दू ही माना गया है, साथ ही यह विश्वास भी है कि जैन व वैष्णव समाज के पाठकों द्वारा हार्दिक सहयोग प्राप्त होगा। कुछ लोग अवश्य मेरी इस विचारधारा से रुष्ट होंगे, उनसे मेरा विनम्र निवेदन है कि जैन वस्तुतः हिन्दू समाज के ही अभिन्न अंग हैं, ऐसा निश्चिय कर लेने के पश्चात ही समाज समर्थ, सुखी, प्रगतिशील, सुदृढ़ और समृद्ध बन सकेगा।

मैं उन प्रसिद्ध ऐतिहासिक विद्वानों तथा चिन्तकों का हृदय से अभिनन्दन करता हूँ, जिनके ग्रन्थों, गन्वेषणापूर्ण निबन्धों

आदि के आधार पर "जैन-हिन्दू एक सामाजिक दृष्टिकोण" यह प्रमाणित कर सका हूँ।

अपने आपको समझाने के क्रम में प्रायः यह अनुभव करता हूँ कि इस प्रयास में त्रुटियों का होना असम्भव है। वैसे भी मनुष्य में दोष और त्रुटियां होती ही हैं। मैं केवल इतना विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि किसी पूर्वाग्रह या पक्षपात से प्रभावित होकर इस पुस्तक के लिखने का प्रयास मैंने नहीं किया, अपनी सामान्य बुद्धि और विवेक से जो कुछ मुझे उचित और विपय-सामग्री के प्रमाण में तथ्यपूर्ण जान पड़ा, उसे ही लिखा है।

सभी विद्वत्-समाज से पुनः विनम्र निवेदन करते हुए मैं यह विश्वास करता हूँ कि यह पुस्तक जैन और वैष्णव की एकरूपता और उनके समन्वयात्मक मूल्यों की स्थापना में सहायक हो सकेगी।

—रतन चन्द मेहता

वासौदा दाल मिल,
गंज–वासौदा (म० प्र०)

अनुक्रम

- जैन आचार्य : जो पहले वैष्णव थे
- जैन वीर : जो पहले वैष्णव थे
- जैन व वैष्णव मूर्तियों की एक मन्दिर में स्थापना
- भारत में जैन तीर्थ
- भारतीय संस्कृति और गाय के प्रति जैनियों की श्रद्धा
- कर्म मोक्ष और पुर्नजन्म

३ : सामाजिक परिप्रेक्ष्य और जैन तथा वैष्णव धर्म का समन्वयात्मक विश्लेषण

- जैनियों में हिन्दू वेषभूषा, भाषा और साहित्य
- हिन्दू विधि
- जैन और यज्ञोपवीत
- विवाह सम्बन्ध
- जैन और वैष्णव समाज में स्त्री का स्थान
- त्यौहार और पर्व
- जैन और वैष्णव में मृत्यु संस्कार

४ : निष्कर्षतः

- संदर्भ ग्रन्थ

सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य
और
जैन तथा हिन्दू धर्म का
समन्वयात्मक विश्लेषण

जिज्ञासा

● आपकी संस्कृति कौन-सी है…?

—भारतीय

● आप हिन्दू हैं…?

—हां

● क्या प्रमाण है उसका…?

—मैं हिन्दुस्तान को अपनी मातृभूमि मानता हूँ…

—मेरी मातृभाषा हिन्दी है…

—मैं देवमूर्ति का सम्मान करता हूँ…

—मैं पुर्नजन्म को स्वीकार करता हूँ…उससे मुक्त होने के प्रति सचेष्ट हूँ…

—सब जीवों के अनुकूल वर्ताव को ग्रहण करता हूँ…

—अहिंसा को धर्म मूल में मानता हूँ…

—गौ सेवा में निष्ठा रखता हूँ…

भारतीय संस्कृति और जैन-धर्म

संस्कार सम्पन्न जीवन का नाम ही संस्कृति है। जहां मानसिक, वाचिक और कायिक विकृतियां स्वतः परिष्कृत होकर सामने आती हैं। मानव जीवन के तीन पक्ष ज्ञान, भाव और कर्म जो क्रमशः बुद्धि, हृदय और व्यवहार से सम्बद्ध हैं, के पूर्ण सामन्जस्य से संस्कृति का निर्माण होता है। वस्तुतः संस्कृति किसी एक व्यक्ति के प्रयत्नों का परिणाम न होकर अनेक व्यक्तियों द्वारा वौद्धिक दिशा में किये गये सम्पूर्ण प्रयत्नों की अन्विति है।

तत्वज्ञान, नीति, विज्ञान और कला, ये चार संस्कृति के विभिन्न तत्व हैं, जिसके अन्तर्गत मनुष्य अपनी बुद्धि से विचार और कर्म के क्षेत्र में जो सृजन करता है वह संस्कृति कहलाती है। मैथ्यु आर्नल्ड के अनुसार विश्व के सर्वोच्च कथनों और विचारों का ज्ञान ही सच्ची संस्कृति है। पंडित देवेन्द्र, मुनि शास्त्री भी इसे स्वीकार करते हैं कि संस्कृति यद्यपि अदृश्य जीवन तत्वों की भांति कुछ रहस्यमय और दुर्वोध है तथा ठीक-ठीक शब्दों की पकड़ में नहीं आती तथापि इतना कहा जा सकता है कि संस्कृति किसी जाति या देश की आत्मा है। इससे उसके सब संस्कारों का वोध हो जाता है, जिसके सहारे वह सामूहिक या सामाजिक जीवन का निर्माण करता है।

संस्कृति एक अविरोधी तत्व है जो विरोध को नष्ट कर

प्रेम का सुनहरा वातावरण निर्माण करता है। नाना प्रकार की धर्मसाधना, कलात्मक प्रयत्न, योग मूलक अनुभूति और तर्क मूलक कल्पना शक्ति से मानव जिस विराट् सत्य को अधिगत करता है, वह संस्कृति है। संस्कृति एक प्रकार से विजय यात्रा है, असत् से सत् की ओर, अंधकार से प्रकाश की ओर, मृत्यु से अमृत की ओर बढ़ने का उपक्रम है।[1]

इस प्रकार कहा जा सकता है कि संस्कृति में धर्म, दर्शन, विज्ञान, कला एवं सम्पूर्ण जीवन का सार तत्व सन्निहित है। इसी क्रम में अब हम हिन्दूत्व शब्द पर भी विचार करना चाहेंगे। हिन्दूत्व मूलतः हिन्दूपन को कहा जाता है। हिन्दूपन के भीतर हिन्दू धर्म, हिन्दू मर्यादा, हिन्दू संस्कृति, हिन्दू सभ्यता, हिन्दू परम्परा, हिन्दू कला आदि सभी कुछ आ जाते हैं। हिन्दूत्व का स्वरूप इतना व्यापक है कि इसकी रक्षा के लिए वे भी प्राण देने को तैयार हैं जो हिन्दत्व की दो ही एक बातें मानते हैं। दक्षिण के अनार्य कहलाने वाले अब्राह्मण (आदि द्रविड़) भी अपने को हिन्दू कहने में गर्व का अनुभव करते हैं। आर्य समाजी, सिक्ख, जैन, बौद्ध आदि सभी हिन्दू महासभा में सम्मिलित हैं।[2]

दोनों जैन सम्प्रदायों के अन्तर्गत कई पंथ और कई टोले हो जाने के उपरान्त भी जैन लोग हिन्दू देव-देवियों की अभी भी पूजा करते हैं तथा उन पर पूर्ण श्रद्धा रखते हैं। वे बहुत से हिन्दू त्यौहार उसी श्रद्धा के साथ मानते हैं तथा हिन्दु देव स्थानों पर जाकर अपने बच्चों के मुंडन संस्कार एवं विवाह

१. साहित्य और संस्कृति—लेखक पं० देवेन्द्र मुनि शास्त्री, पृष्ठ १८४

२. हिन्दूत्व का व्यापक स्वरूप—हिन्दू संस्कृति अंक—कल्याण पृष्ठ ३३९

के बाद दूल्हा दुल्हिन को अपनी मान्यता के अनुसार धोक दिलवाते हैं।

पं० श्री सूरजचंद जी सत्य प्रेमी डांगी जी ने भी लिखा है कि हिन्दू संस्कृति समस्त संसार को परम कल्याण का संदेश सुनाती रही है। सनातन धर्म हिन्दू संस्कृति की आत्मा है, जैन धर्म हृदय है, बौद्ध धर्म बुद्धि है, सिक्ख धर्म बाहु है, वैष्णव धर्म मुख है। शैव धर्म मस्तक है। शास्त धर्म वीर्य, गाणपत्य धर्म पेट है। सौर धर्म तेज है और इसी प्रकार अन्य-अन्य धर्मों को भी उसके भिन्न-भिन्न अंग प्रत्यंग मान लेना चाहिए। इस प्रकार जो संस्कृति अपने भिन्न-भिन्न साधनों से दुर्वितियों को हनन करने की चेष्टा करती है, वही हिन्दू संस्कृति है।[1]

जैन और बौद्ध हिन्दुओं का धार्मिक साहित्य विशाल है और अधिकांश में पाली-प्राकृत में लिखा गया है। जैन हिन्दुओं के श्वेताम्बर और दिगम्बर नामक दो भेद हैं और स्याद्वाद नामक दार्शनिक सिद्धान्त बड़ा प्रसिद्ध है। 'कल्याण' के हिंदू संस्कृति अंक में कुछ आचार्य और भक्त शीर्षक की शृंखला में पेज ८६४ पर श्री भगवान् महावीर के जीवन चरित्र पर प्रकाश डालते हुए लिखा गया है कि सभी वर्ग, सभी जाति के लिए उनके धर्म का द्वार उन्मुक्त था। उनके शिष्यों में चारों वर्णों के मुख महापुरुष हुए हैं। पेज ८०८ पर भगवान् ऋषभ-देव के जीवन, उनके त्याग तपस्या पर प्रकाश डाला गया है।

भारतीय संस्कृति मिली-जुली संस्कृति है। बहुत प्राचीन काल से हमारा देश अनेक जातियों का संगम स्थल रहा है। प्राचीन काल में भारतीयों को आर्य सम्बोधित किया जाता था और भारतीय संस्कृति मूलतः आर्यों की ही संस्कृति है।

१—हिन्दू संस्कृति का स्वरूप : हिन्दू संस्कृति अंक—कल्याण पृ० ३६०

आर्य का अर्थ है सत्पुरुष। जिस भूभाग में दीक्षा, संयम, नियम; उपवास, त्याग और निष्ठा आदि हैं वह पूरा क्षेत्र आर्य क्षेत्र है। आर्यों को ही बाद में हिन्दू कहने लगे।

रामायण एवं महाभारत की घटनायें प्रकारान्तर से ब्राह्मण एवं जैन दोनों ही परम्पराओं में प्रायः एक-सी पाई जाती हैं और समान रूप से लोकप्रिय हैं। वस्तुतः दोनों धाराओं के कथानक एक दूसरे के पूरक हैं और नियमित इतिहास के प्रारंभ से पूर्व के अनुश्रुतिगम्यकाल के लिए ब्राह्मण परम्परा के वैदिक साहित्य रामायण एवं महाभारत काव्य तथा पुराण ग्रंथ जितने उपयोगी हैं, उतने ही जैन पुराण साहित्य तथा धार्मिक अनुश्रुतियां भी हैं। जैसा कि प्रो० जयचन्द्र विद्यालंकार का कथन है, भारत का प्राचीन इतिहास जितना वेदों को मान्य करने वाला है उतना ही वेद विरोधी जैनों का है। जैनों के प्राचीन तीर्थन्किर भी वैसे ही वास्तविक ऐतिहासिक पुरुष हैं जैसे कि वेदों के रचियेता हैं। ऋषिगण तथा ब्राह्मण परम्परा के अन्य प्राचीन महापुरुष। वस्तुतः जैन पुराण कथानकों के उस काल संबंधी चित्रण कहीं अधिक बुद्धिगम्य, युक्तियुक्त एवं वास्तविकता के निकट हैं। श्रमण संस्कृति भी शुद्ध भारतीय मानव संस्कृति है, जो वैदिक धर्म और ब्राह्मण संस्कृति के उदय के संभवतः कुछ पूर्व ही अस्तित्व में आ चुकी थी और विकसित हो चुकी थी। ब्राह्मण वैदिक संस्कृति के उदय के उपरान्त वह उसके साथ संघर्ष करती, समन्वय करती, आदान प्रदान करती तथा अपनी पृथक सत्ता भी बनाये रखती हुई फलती-फूलती और विकसित होती रही।[1]

१—भारतीय इतिहास : एक दृष्टि—डा० ज्योतिप्रसाद जैन—पृ० ३२

जव विभिन्न संस्कृतियां एक क्षेत्र व एक काल में अनुकूल व प्रतिकूल घनिष्टतम सम्पर्क में आती हैं तो उनमें परस्पर न्यूनाधिक प्रभाव पड़ता ही है एवं उनमें परस्पर वहुत कुछ आदान प्रदान भी होता ही है। जैन धर्म और संस्कृति ने भी प्रत्यक्ष व परोक्ष रूप में अन्य भारतीय संस्कृतियों को प्रभावित किया है तथा वह भी उनके प्रभावों से अछूती नहीं रही। जैनियों के अल्प संख्यक होने के कारण उन पर यह प्रभाव विशेष देखने में आता है। भट्टारक युग में व्यापक समाज के साथ अपना तालमेल बैठाने के लिए उन्होंने शैव और वैष्णव क्रियाओं का अनुकरण किया। राजस्थान के इतिहास में इस प्रकार के कई उदाहरण मिल जायेंगे कि एक ही कुल में जैन और शैव साधना चलती थी। विशेपकर वैदिक सम्प्रदायों का अद्भुत प्रभाव श्रमण संस्कृति पर पड़ा। इससे जैन समाज का ढांचा विल्कुज वदल गया।[1]

वस्तुतः परस्पर प्रभाव ग्रहण की यह प्रक्रिया किसी मूल संस्कृति के अलगाव का संकेत नहीं वल्कि उसके विभिन्न दिशागत विकास की सूचक है।

इसी के समानान्तर महावीर स्वामी से पूर्व जैन धर्म 'निग्रंथ मत' नाम से प्रचलित था और वैदिक धर्म का विरोधी नहीं था। वैदिक धर्म के समान ही जैन धर्म आत्मा की सर्वव्यापकता मानता है। दोनों का पूर्नजन्म में विश्वास है।

शुभाशुभ कर्मों के फलों में दोनों की समान धारणा है। वैदिक धर्म की भांति यम-नियम एवं तपस्या के महत्व को जैन धर्म ने भी प्रधानता दी है। जैन त्रिरत्न व पंचमहाव्रत का वैदिक धर्म में भी समान महत्व है।

जैन धर्म भागवत धर्म की भांति मूर्ति-पूजा, उपवास आदि

१-पं० टोडरमल : व्यक्तित्व और कर्त्तव्य-डा० हुकमचन्द भारित्य-पृ० १३

विधानों को मानते हैं। दोनों ही सदाचार पर बल देते है।[१]

भारतवर्ष के इतिहास का अवलोकन करने पर संस्कृति की विभिन्न धारायें हमें दिखाई पड़ती हैं। स्मरणीय है कि ये धारायें, धारायें हैं दीवारें नहीं। दो पड़ोसी जैसे आपस में एक दूसरे से प्रभावित होते हैं उसी प्रकार पड़ोसी धर्म या संस्कृतियां भी एक दूसरे से प्रभावित हुए विना नहीं रहतीं। अलबत्ता एक की दूसरे के द्वारा रक्षा और पोषण का कार्य होना चाहिए। भारतवर्ष के मुख्य धर्म तीन थे। वैदिक, जैन और बौद्ध। इन तीनों के जो भी संदेश हैं वे आपको मिलते-जुलते से मिलेंगे। कभी-कभी तो ऐसा प्रतीत होता होगा कि जीवन की समस्याओं को हल करने मे वे एक दूसरे के पोषक हैं।[२]

भारतीय संस्कृति का स्वरूप दर्शन करने के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि भारतवर्ष में प्रचलित और प्रतिष्ठित विभिन्न संस्कृतियों का समन्वयात्मक दृष्टि से अध्ययन हो। भारतवर्ष की प्रत्येक संस्कृति की अपनी एक विशिष्ट धारा है। वह उसी संस्कृति के विशिष्ट रूप का प्रकाशक है। यह बात सत्य है, परन्तु यह बात तमीसत्य है कि उन संस्कृतियों का एक समन्यात्मक रूप भी है। जिसको उन सब विशिष्ठ संस्कृतियों का समान्वित रूप माना जा सकता है, वही यथार्थ भारतीय संस्कृति है। प्रत्येक क्षेत्र में जो समन्यात्मक रून है, उसका अनुशीलन ही भारतीय संस्कृति का अनुशीलन है। गंगा-जमुना तथा सरस्वती इन तीनों नदियों की पृथक सत्ता और महात्म रहने पर भी इनके परस्पर संयोग से जो त्रिवेणी संगम की अभिव्यक्ति होती है उसका महत्व और भी अधिक है।[३]

१–प्राचीन भारतीय इतिहास –हेतसिंह बघेला –पृ० १८६

२–जीवन दर्शन लेखक अमर मुनि–पृ० २२०

३–सूक्ति त्रिवेणी : अमरमुनि–प्राक्कथन : पं० गोपीनाथ कविराज

"हिन्दू": एक अन्तरङ्ग विश्लेषण

भारत हिन्दुओं का देश है। उसकी संस्कृति भारतीय संस्कृति है जिसे हिन्दू संस्कृति भी माना गया है। हिन्दू कौम ? इस सन्दर्भ में विनोबा भावे ने लिखा है –

'योवर्णाश्रम निष्ठावान गोमत, श्रुतिमातृकः।
मूर्तिचनाव जानाति सर्व धर्म समादरः॥
उत्प्रेक्षते पुर्नजन्म तस्मान्योक्षणमी हते।
भूतानुकूल्यं भजते सर्वे हिन्दूरीति स्मृतः॥
हिंसयात दूयतेचित्तं तेनह्रिंदूरित्तीरितः॥ [1]

जो वर्णों और आश्रमों की व्यवस्था में निष्ठा रखने वाला, गोसेवक, श्रुतियों को माता की भांति पूज्य मानने वाला तथा सब धर्मों का आदर करने वाला है, देवमूर्ति की जो अवज्ञा नहीं करता, पुर्नजन्म को स्वीकार करता है तथा उससे मुक्त होने की दिशा में सचेष्ट है, जो सदा सब जीवों के अनुकूल वर्ताव को अपनाता है, वही हिन्दू माना जा सकता है। हिंसा से उसका चित्त दुखी होता है, इसलिये उसे हिन्दू कहा गया है।

हिन्दू शब्द और उसके सम्बोधन की भौगोलिक पृष्ठभूमि पर इससे पूर्व भी चर्चा की जा चुकी है तथापि यहां पुनः ये संकेत देना अप्रासांगिक नहीं है कि सिन्धु नदी के इस तट पर पूरे क्षेत्र में रहने वाले लोगों को क्रमशः सिन्ध और हिन्दू जैसा

१–कल्याण–हिंदू संस्कृति अंक–पृ० ६२

सम्बोधन मिला । निश्चित ही इस सम्बोधन के पीछे एक मूलभूत संस्कृति का अलगाव प्रारम्भ में रहा होगा, किन्तु जिन मारे धर्मों और एक ही भारतीय संस्कृति से अपना अलगाव दर्शित करने के लिए विदेशी आक्रमणकारियों द्वारा हिन्दू जैसा सम्बोधन आर्य संस्कृति और उसे स्वीकार करने वाले आर्यों के लिए प्रयोग किया गया, उसमें जैन, बौद्ध, वैदिक आदि अलग-अलग धर्मों की परिकल्पना सम्मिलित नहीं थी ।

आज भी सिन्धु नदी से लेकर दक्षिण सागर तक की भूमि को एक हिन्दू अपनी पुण्य भूमि मानता है । पुण्य भूमि का अर्थ है, ऐसे तीर्थ स्थान और संबंधित तीर्थंकर जो इस भूमि में ही उत्पन्न हुये हों और यहीं निर्वाण प्राप्त किया हो ।

मनुस्मृति में हिन्दू की परिभाषा इन शब्दों में की गई है–
'हिंसया दूयतेयस्मात् हिन्दू रित्यामिधीयते'

अर्थात हिन्दू वह है जो हिंसात्मक कर्मों से घृणा करता है अथवा जिसे (हिं) हिंसात्मक कर्म से (दु) दुःख होता है ।

मेरु तंत्र के अनुसार–हीनं च दूषयत्येष हिन्दूरित्यमिधीयते ।' हिन्दू वह है जिसे हीन कर्म अर्थात नीच कर्म से द्वेष हो ।

उल्लेखनीय है कि जिसे वस्तुतः हम हिन्दू कहते हैं वह कोई धर्म नहीं है । धर्म की पहली शर्त है, उसमें किसी एक विशेष उपास्य का होना और संबंधित उपासना की एक निश्चित पद्धति के प्रति आत्मिक निष्ठा ।

भारत में उत्पन्न आध्यात्मिक और नैतिक सिद्धान्तों पर विश्वास रखने वाले अथवा उनके प्रति श्रद्धा रखने वाले तथा उनका अनुसरण करने वाले सभी व्यक्ति हिन्दू हैं ।

हिन्दू विश्व विशेषांक का प्रथम श्लोक इस सन्दर्भ में उल्लिखित है–

यशैवैः समपासते शिवइति
वहूयैति वेदान्ति नौ
वौद्धा वुद्ध इति प्रमाणपटवः
कतेति नैयायिकाः ।
अर्हन्नित्यथ जैनशासनरताः
कर्मेति मीमांसकाः
सौ यं नौ विध्धातु वान्छितफलं
त्रेलोक्य नाथो हरिः ॥

(हनुमन्नाटक १।३)

अर्थात शैव, वेदान्ती, वौद्ध, जैन आदि शिव, ब्रह्म, बुद्ध, अर्हन् आदि के रूप में एक ही तत्व की उपासना करते हैं। यह था सही अर्थों में प्राचीनकाल की संपूर्ण सांस्कृतिक समन्वय को वनाये रखने का अभूतपूर्व प्रयास।

अव आइये इसी संदर्भ में हिन्दू धर्म की भी विवेचना कर ली जाये। यह तो स्पष्ट ही है कि सिन्धु नदी के पास वसने वाले लोगों को पश्चिम के लोगों ने हिन्दू कहा और उनके धर्म को हिन्दू कहा गया। प्राचीन शास्त्रों में हिन्दू धर्म का उल्लेख 'धर्म' शव्द से ही किया है। इससे जान पड़ता है कि प्राचीन युग में हिन्दू धर्म के सिवा दूसरा कोई धर्म नहीं रहा होगा। कहीं-कहीं इस धर्म को सनातन धर्म भी कहा जाता है। 'एक धर्मः सनातनः' वह सनातन धर्म है।

सनातन धर्म शव्द से हिन्दू धर्म केवल एक गुण का उल्लेख होता है। सनातन का अर्थ हैनित्य स्थायी अर्थात इसकी उत्पत्ति नहीं है।

इस लेख से साफ जाहिर होता है कि सिन्धू के इस पार

रहने वाले हिन्दू कहलाये, जिनमें वैष्णव, सिव्यूव, जैन आदि सभी सम्मिलित थे और उनके धर्मों को भी हिन्दू धर्म के नाम से ही पुकारा जाता था। वर्तमान काल में अगर वैष्णव धर्मी अपने को हिन्दू कहते हैं तो जैनों को भी हिन्दू कहने में संकोच नहीं होना चाहिए।

साप्ताहिक हिन्दुस्तान २१ मई १९७२ में स्वामी रामचन्द्रवीर अपने लेख में लिखते हैं कि हिं–(हिंसा) दू–(दूर) हिंसा से जो दूर रहे वह हिन्दू है। अपना धर्म हिंदू धर्म है। वह सम्प्रदाय नहीं है हिन्दू राष्ट्र है।

इसी पत्र में प्रो० बलराज मघोक लिखते हैं कि जो भारतीय है वो हिंदू हैं।

इस शब्द का उद्‌गम सिन्धु नदी से है। ईरानी लोगों ने सिन्धु नदी के देश को सिन्धु स्थान–हिन्दुस्तान (फारसी में संस्कृत का स–ह हो जाता है) कहा और हिन्दुस्तान के लोगों को हिंदू कहा। हिंदू कोई सम्प्रदाय या पंथ नहीं है, बल्कि भारतीय जन का एक राष्ट्र है और हिन्दू धर्म उनकी जीवन पद्धति है। हमारे भूतपूर्व राष्ट्रपति डा० राधाकृष्णन के अनुसार हिंदूइज्म कोई मजहब नहीं है। यह मजहबों और पंथों की 'कामनवेल्थ' है।

अब हम हिन्दू शब्द के प्रथम अर्थ की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर विचार करें–हिन्दुस्तान का प्राचीन नाम भारतवर्ष था। भगवान् ऋषभ के पुत्र भरत के नाम से इस भूखण्ड का नाम भारतवर्ष पड़ा था। इसके साक्ष्य में श्री मद्‌भागवत अन्य अनेक पुराण तथा जैन साहित्य का उल्लेख किया जा सकता है। भारतवर्ष के निवासी लोगों का व्योपारिक, राजनयिक,

सांस्कृतिक व धार्मिक सम्बंध विदेशों के साथ बहुत प्राचीनकाल से था। भारतवर्ष की सीमा पश्चिम में सिन्धु नदी, पूर्व में ब्रह्मपुत्र नदी, उत्तर में हिमालय की दक्षिण श्रेणी और दक्षिण में समुद्र कर रहा था। सिन्धु नदी से परवर्ती पारसीक, यवन आदि देशों में रहने वाले लोग सिन्धुनद से उल्लक्षित इस भूखण्ड (भारतवर्ष) को हिन्दू कहते थे। हिन्दू या हिन्दू सिन्धू का रूपान्तर है जो उनकी स्वदेशोच्चारण शैली में हुआ है।

कालकाचार्य जब पारसीक देश में गये थे, तब उन्होंने शाही लोगों से यही कहा—'चलो, हम हिंदुग देश में चलें—एहि हिंदुग देसं बच्चाभी। इस घटना का उल्लेख जिनदास महत्तर ने 'निशीथचूर्णि' में किया है। वह विक्रम की सातवीं शताब्दी की रचना है। इससे स्पष्ट है कि उस समय तक 'हिंदुग' का प्रयोग देश के लिये होता था। अभिधान राजेन्द्र (७।१२८) में हिन्दु शब्द के अर्थ-परिवर्तन का क्रम बतलाया गया है। उसके अनुसार पहले 'हिन्दू' शब्द देशवाची था फिर आधार-आधेय के सम्बंधोपचार से वह 'हिन्दू' देशवासी आर्य लोगों का वाचक हुआ और तीसरी अवस्था में वह वैदिक धर्म के अनुयायियोंका वाचक हो गया—

'हिन्दुरिती व्यवहार तो जनपद परोचितात् स्त्यात् आर्य मनुष्य परो पयात।

क्रमादेतद्देश प्रसिद्ध वेद मूलक लोकायमानु सारिष्वपि बोधकोजात वैदिक काल में सिन्धु और पंजाब को सप्तसिन्धु कहा जाता था। ऋग्वेद (१।३२।१२,२।१२।१२ आदि) में सप्तसिन्धु का प्रयोग मिलता है। पारसियों के धार्मिक ग्रंथ अवेस्ता में सप्तसिन्धु के लिए 'हप्तहिन्दु' का प्रयोग मिलता

है। ऋग्वेद (४।२७।१) में केवल सिन्धु का प्रयोग मिलता है। हिंदू उसी सिंधु का पार्शीयन रूपान्तर है।'[1]

प्राचीन तथा अर्वाचीन, हिंदू तथा अहिंदू आस्तिक तथा नास्तिक जितने प्रकार के भारतीय हैं, सबों के दार्शनिक विचारों को भारतीय दर्शन कहते हैं। कुछ लोग भारतीय दर्शन को हिन्दू दर्शन का पर्याय मानते हैं। किन्तु यदि 'हिंदू' शब्द का अर्थ वैदिक धर्मावलम्बी हो तो 'भारतीय दर्शन' का अर्थ केवल हिंदुओं का दर्शन समझना अनुचित होगा। इस सम्बंध में हम माधवाचार्य के 'सर्वदर्शन-संग्रह' का उल्लेख कर सकते हैं। माधवाचार्य स्वयं वेदानुयायी हिंदू थे। उन्होंने उपर्युक्त ग्रंथ में चार्वाक, बौद्ध तथा जैन मतों को भी दर्शन में स्थान दिया है। इन मतों के प्रवर्त्तक वैदिक धर्मानुयायी हिंदू नहीं थे। फिर भी इन मतों को भारतीय दर्शन में वही स्थान प्राप्त है जो वैदिक हिंदुओं के द्वारा प्रवर्तित दर्शनों को है।[2]

यह हिंदू धर्म है। हिंदू धर्म शब्द भारत के किसी महान् ग्रंथ में कहीं नहीं प्राप्त होता, इसी से उसका विश्वत्व स्पष्ट हो जाता है। हिंदू धर्म का प्रयोग हम अपनी सुविधा एवं एवं सीमा के कारण करते हैं। इस शब्द की उपयोगिता यहीं तक माननी चाहिये।[3]

बौद्ध धर्म, जैन धर्म और सिखपंथ के सदृश ही हिंदू

१—समस्या का पत्थर—अध्यात्म की छैनी: मुनिनथमल जी—पृष्ठ १२८

२—भारतीय दर्शन—श्री सतीशचंद चट्टोपाध्याय एवं श्री धीरेन्द्र मोहन दत्त—पृ० १

३—हिंदू धर्म—रामप्रसाद मिश्र-प्रस्तावना पृ० ३

धर्म की एक शाखा है। हिंदू धर्म इस तथ्य पर गर्व कर सकता है और करता है।

वर्तमान शिक्षा प्रणाली हिंदू समुदाय की भावनाओं एवं मान्यताओं के विपरीत घड़ी गई थी, अतः इस सम्पूर्ण सामर्थ्य हिंदूससुदाय के स्वरूप को विकृत कर इसे विश्व में निकृष्ट सिद्ध करने में लग रहा है।

इस कुशिक्षा के कुकृत्यों का उल्लेख तो इस स्थान पर नहीं किया जा सकता, परन्तु कुछ एक ऐसे प्रयासों को, जो प्रसंग में नितांत उपयुक्त है, प्रकट करना हम आवश्यक समझते हैं।

शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी भाषा होने से अनेकानेक अंग्रेजी के ऐसे शब्दों का हठपूर्वक संस्कृत के प्रचलित शब्दों का पर्याय मान लिया गया है, जिनसे भयंकर परिणाम निकल रहे हैं। यहां हम ऐसे दो एक शब्दों के विषय में ही लिखेंगे।

उदाहरण के रूप में 'धर्म' शब्द का अंग्रेजी में अनुवाद 'रिलीजन' किया गया है। इक्के-दुक्के वैदिक भाषा को समझने वाले कहते हैं कि हिंदू धर्म के अर्थ 'रिलीजन' नहीं और हिंदू धर्म से वे सब बातें नहीं जोड़ी जा सकतीं, जिनका संबंध रिलीजन से है। परन्तु प्रतिवर्ष लाखों की संख्या में अंग्रेजी भाषा के माध्यम से शिक्षित, स्कूलों कालेजों से निकलने वाले विद्यार्थी तो धर्म को रिलीजन ही मानेंगे और फिर हिंदू को एक मजहब ही कहते जायेंगे।

यह बात केवल कहने मात्र की ही नहीं है वरन् इस एक शब्द के मिथ्या अर्थ करने से सहस्त्रों नहीं, लाखों स्थानों पर हिन्दू शास्त्रों में धर्म शब्द के अर्थ विकृत किये जा रहे हैं।

आज प्रशासकीय क्षेत्र में हिन्दू का नाम भी इसी कारण घृणित माना जा रहा है, क्योंकि हिन्दू एक धर्म-व्यवस्था है और अंग्रेजी माध्यम से शिक्षित लोग धर्म को मजहब ही समझते हैं। इस कारण हिन्दू एक सम्प्रदाय माना जाने लगा है तथा हिन्दू का पक्ष लेना साम्प्रदायिकता हो गया है और साम्प्रदायिकता को औपसर्गिक रोग माना जाने लगा है।

इस प्रकार एक अन्य शब्द है 'नेशन' नेशन का पर्याय संस्कृत अथवा हिन्दी में जाति तथा राष्ट्र किया जाता है। हिन्दू एक राष्ट्र है और उसे नेशन मान लिया जाता है। कारण यह कि अंग्रेजी के 'नेशन' शब्द को जाति और राष्ट्र दोनों माना जाता है।

वास्तव में 'नेशन' के अर्थ न तो जाति है और न ही राष्ट्र। परिणाम यह हो रहा है कि यदि यह कहा जाता है कि भारत में हिन्दू राष्ट्र है तो उसके अनेक शब्दों में राष्ट्र का अभिप्राय 'नेशन' होने से उसे हिन्दू नेशन मान लिया जाता है और इस देश में 'नेशन' तो देश के नागरिक बनाते हैं। नागरिक केवल हिन्दू ही नहीं। हिंदू एक मजहब है और इस देश में कई मजहबों के लोग रहते हैं। अब तो हिंदू को एक पृथक मजहब मान सिक्ख, बौद्ध सबको अहिंदू घोषित किया जा रहा है तथा कथित अछूतों को भी हिंदू न मानने का प्रयास किया जा रहा है।

श्री अम्बेदकर का अछूतों को बौद्ध हो जाने की सम्मति देने का अभिप्राय यही था कि वे इस प्रकार हिंदू की मुख्य धारा से पृथक हो जायेंगे, क्योंकि वह अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त वकील हिंदू को एक मत मानता था और बौद्ध मत को हिंदू

मत से पृथक समझता था।

यह विकृति भी अंग्रेजी भाषा के शब्दों को 'हिंदू' की व्याख्या के लिए प्रयोग करने के कारण हुई है।[1]

हम देखते हैं कि आजकल लोग हिन्दू (आर्य) का लक्षण अनेक प्रकार से करते हैं, पर बिना आर्य इतिहास के समझे वे हिन्दू का ठीक-ठीक लक्षण ही नहीं कर सकते, पर वैदिक जानते हैं कि शिखा सूत्रधारी को आर्य (हिंदू) कहते हैं। शिक्षा में सिक्ख, बौद्ध, जैन, शूद्र और कौल-भील समा जाते हैं।[2]

हिंदू कौन है ? विनोबा भावे लिखते हैं कि जो वर्णों और आश्रमों की व्यवस्था में निष्ठा रखने वाला, गौ-सेवक, श्रुतियों को माता की भांति पूज्य मानने वाला तथा सब धर्मों का आदर करने वाला है, देवमूर्ति की जो अवज्ञा नहीं करता, पुनर्जन्म को मानता और उससे मुक्त होने की चेष्टा करता है तथा जो सदा सब जीवों के अनुकूल बरताव को अपनाता है, वही हिंदू माना गया है। हिंसा से उसका चित्त दुःखी होता है, इसलिए उसे 'हिंदू' कहा गया है।

डा० हेडगेवार और वीर सावरकर जी के दृष्टि बिन्दुओं में पूर्णतः साम्य उपस्थित है। इसके अनुसार हिंदू के निम्नलिखित धर्म होने चाहियें :—

(१) वह आसिन्धु सिन्धु पर्यन्त भूमि को भारतभूमि माने।
(२) इस भूमि को वह अपनी पुण्यभूमि माने।
(३) इसी को वह अपनी पितृभूमि माने।

१–हिन्दू का स्वरूप–गुरुदत्त–पृ० ६
२–वैदिक आर्य सभ्यता–स्व० श्री पं० रघुनन्दनजी शर्मा

इन तीनों मान्यताओं पर आचरण करने वाला हिंदू है।[1]

सिद्धान्त और व्यवहार का समन्वय डा० हेडगेवार वीर सावरकर की तरह ही हिन्दू की व्यापक और सर्वप्रिय परिभाषा यही मानते थे कि भारत भूमि को जो व्यक्ति अपनी जन्मभूमि, कर्मभूमि और पितृभूमि मानता है वह राष्ट्र नहीं है। उसे इस भूखण्ड को पितृभू और पुण्यभू मानना आवश्यक है और यह भाव हिंदू ही धारण कर सकता है। वह इस देश को अपनी जन्म-भूमि मानता है। इसलिए यह मातृभूमि हुई। उसके सभी पूर्वज इसी भूमि पर उत्पन्न हुए हैं और यही उनकी शाश्वत कर्मभूमि रही है, इसलिये यह हिंदुओं की पितृ-भू हुई। सम्पूर्ण वेद-शास्त्रों और दर्शन-ग्रंथों का आविर्भाव इसी खण्ड पर हुआ है।

यह देश हिंदू राष्ट्र है और इसी राष्ट्र का राष्ट्रीय हिंदू है।[2]

हिंदू शब्द की परिभाषा—हिंदू इस राष्ट्र में जाति रूप में वह प्रवहमान धारा है जो वैदिक ऋषियों, रामायण और महाभारत काल के राजन्य तथा ब्राह्मण्य के पुरोधाओं, परवर्ती अस्तिक दर्शनों के आचार्यों, बौद्ध और जैन धर्माचार्यों, सन्तों एवं शिष्य गुरुओं को श्रद्धा-भाव अर्पित करते हुए यूनान, (ग्रीक) शुंग, हूण-सं मुस्लिम एवं ईसाई आक्रांताओं के आघातों को सहन करती हुई तथा उनका निराकरण करती हुई इस भारत

१—हिन्दुत्व का अनुशीलन—तनसुख राम गुप्त—पृ० १७

२—हिन्दुत्व का अनुशीलन—तनसुख राम गुप्त—पृ० ४६

राष्ट्र को पुण्यभूमि, मातृभूमि एवं आध्यात्म-अनध्यात्म की कर्मभूमि स्वीकार करती आई है।[1]

भोपाल हिंदू महासभा के अध्यक्ष श्री कोमलप्रसाद श्रीवास्तव ने 'हिंदू' शब्द किसी अर्थ में सम्प्रदायिक नहीं, हिंद शब्द की व्याख्या करते हुए उसे साम्प्रदायिकता से परे राष्ट्रीय भावना का सूचक निरूपित किया है।[2]

इसी प्रकार सनातन धर्म के मान्य नेता स्वामी करपात्री जी ने हिंदू की परिभाषा इस प्रकार की है–

गोपु भक्तिर्भवेथस्य प्रणवे चद्दढ़ामतिः ।
पुनर्जन्मानि विश्वासः सर्वे हिंदुरितिस्मृतः ॥

अर्थात गौमाता एवं ओंकार में जिसकी भक्ति हो तथा पुनर्जन्म में जिसका विश्वास हो, वह हिंदू है।

स्वामी जी की परिभाषा विस्तृत है, क्योंकि जाति की पांचों शाखायें सनातन धर्मा, आर्य सामाजी, जैनी, बौद्ध एवं सिक्ख, गौमाता, ओंकार एवं पुनर्जन्म में समान भक्ति व विश्वास रखती है।

हिंदू महासभा के महान नेता स्वातंत्रवीर सावरकर आस्तिकों के अतिरिक्त नास्तिकों को भी अलग नहीं करना चाहते। अतः उन्होंने विस्तृत परिभापा की है।

आसिन्धु सिन्धु पर्यन्ता यस्य भारत भूमिका ।
पितृभूः पुण्यभूश्चैव सर्वे हिन्दुरितिस्मृतः ॥

अर्थात इस भारत भूमि में रहने वाला प्रत्येक व्यक्ति हिंदू

१–हिन्दुत्व का अनुशीलन –तनसुख राम गुप्त–पृ० ६५

२–नवभारत–भोपाल–१४ जनवरी १९७४

है जो इसे पितृभूमि व पुण्यभूमि मानता है।[1]

वस्तुतः वर्ण व्यवस्था के पूर्व सब एक ही जाति के थे जो आर्य कहलाये। मूल वर्ण व्यवस्था कर्म के आधार पर एक गुणात्मक विभाजन का परिणाम थी, जिसमें परिस्थितियों के समानान्तर अन्य धर्मों का बाद में चल कर समावेश होता गया और अनेक आचार्यों ने भारतीय संस्कृति के समसामयिक मौलिक चिन्तन के अनुरूप अनेक पन्थों की स्थापना की। यही कारण था कि इस संस्कृति में विभिन्न धार्मिक मतों और उसकी व्यवहारिक स्वीकृतियों में किसी तरह का आन्तरिक विरोध या प्रायोगिक असहिष्णुता हमें नहीं मिलती और निःसन्देह एक स्वस्थ भारतीय समाज की संरचना इस बात का प्रमाण है कि आज भी यदि कोई व्यक्ति वैष्णव धर्म छोड़ कर जैन धर्म स्वीकार कर लेता है तो वह किसी प्रकार की कुदृष्टि का शिकार नहीं होता और न उसके प्रति किसी प्रकार के द्वेष की उत्पत्ति होती है। आज भी जैन व वैष्णवों के ऐसे सैंकड़ों कुटुम्ब मिल सकते हैं जो एक संगठन के अन्तर्गत भी अलग-अलग जैन व वैष्णव धर्म का पालन करते हैं। कुछ सदस्य परिवार के जैन धर्म मानते हैं और कुछ वैष्णव धर्म, किन्तु उनकी आस्थायें किसी भी स्तर पर एक दूसरे से न तो टकराती हैं, न ही परिवार के संवेदनात्मक तथा भावात्मक संबंधों में किसी प्रकार का अलगाव महसूस करती हैं।

उदयपुर मेवाड़ में हजारों घर जैन श्वेताम्बर के हैं, जो आज भी वैष्णव धर्म ही मानते हैं।

जैन धर्म हो या वैष्णव धर्म, जातियों के घर में इन्हें नहीं

१—हिन्दुत्व का अनुशीलन—तनसुख राम गुप्त सम्पा०—पृ०८४

बांधा जा सकता । धर्म केवल ईश्वर आराधना की शैली मात्र है । अतः स्पष्ट है कि धर्म के नाम पर गुट या संप्रदाय न बने हैं और न इनमें जाति भेद रहा है ।

वस्तुतः हिंदू संकृसति का साध्य त्याग है, भोग नहीं । हिंदू संस्कृति में स्वाभाविक है, भोगी की अपेक्षा त्यागी का स्थान ऊंचा है । चक्रवर्ती सम्राट भी त्यागी महात्माओं के सामने नतमस्तक होते हैं, यह महान परम्परा जैनों में भी विद्य-मान हैं ।

जिस प्रकार वेद नामक ग्रंथ के कारण उसके अनुयायियों को वैदिक, गुरु नानक जी के धर्म शिष्यों को सिक्ख, विष्णु देवता के उपासकों को वैष्णव, लिंग पूजकों को लिंगायत के नाम प्राप्त होते हैं । वैसे 'हिंदू' यह नाम किसी भी धर्म ग्रंथ से या धर्म-संस्थापक सेवा धर्म-मत से प्रमुखतः या मूलतः निर्मित नहीं हुआ है । वह तो आसिंधु सिंधु प्रसृत देश का एवं उसमें निवास करने वाले राष्ट्र का ही प्रमुख रूप से निर्देश करता है और फिर इसी सन्दर्भ में उसको धम ग्रंथ से या धर्म मत से वन्धित करने वाले प्रयास दिशा भ्रम उत्पन्न करने वाले हैं । हिंदू शब्द की परिभाषा का मूल ऐतिहासिक आधार आसिंधु सिंधु भारत भूमि का ही होना चाहिये । वह देश तथा उसमें उत्पन्न धर्म एवं संस्कृति के बंधनों से अनुप्रमाणित राष्ट्र ये ही हिंदुत्व के दो प्रमुख घटक हैं । अतएव हिंदुत्व के इतिहास से यथासम्भव सम्बंधित होने वाली परिभाषा इसी प्रकार की होगी कि "यह आसिंधु सिंधु भारत भूमिका, जिसकी पितृभू एवं पुण्यभू है, वही हिंदू है ।[1]

१–हिन्दूत्व के पंचप्राण–विनायक दामोदर सावरकर

जैन-हिन्दू एक सामाजिक दृष्टिकोण

जैन धर्म एक सिद्धांत है। हमारा देश जगतगुरु माना जाता रहा है। इसका कारण है, यहां सैंकड़ों सिद्धान्तों और हजारों पन्थों के मानने वाले रहे और आज भी हैं।

अगर कोई जैन साधु व जैन पण्डित समाज के अन्दर यह प्रचार करते हैं कि जैन हिन्दू नहीं हैं तो समाज को भ्रम में डालते हैं। अपनी विशालता को संकीर्णता की ओर ले जाना चाहते हैं। यह अपनी पूजा व प्रतिष्ठा कायम रखने के लिए एक पॉलसी है।

मैं आपसे पूछना चाहूँगा कि जैन धर्म के जो चौवीस तीर्थंन्कर हुए हैं, वे क्या राजपूत नहीं थे, उन्होंने अपना राजपाठ त्याग कर जैन गुरुओं से दीक्षा ली और अपने त्याग और तपस्या द्वारा तीर्थन्कर पद तक पहुंचे, जो जैन भगवान् के नाम से पूजे जा रहे हैं।

जब हमारे देश के क्षत्रिय यथार्थ क्षत्रिय थे। इसलिए उन दिनों भारतीय इतिहास में जो धार्मिक और सामाजिक क्रांति हुई, वह क्षत्रियों द्वारा हुई। यह स्मरण रखना होगा कि बुद्ध और महावीर दोनों क्षत्रिय थे।[1]

जैन धर्म में श्री राम और श्री कृष्ण को अवतार माना

१—भारतीय समाज जीवन और आदर्श—प्रथम भाग—रवीन्द्रनाथ ठाकुर—पृ० ६०

गया है। तथा एक आदर्श पुरुष के रूप में पहले के आचार्यों ने जैन ग्रंथों में इन पर काफी विस्तार से विवेचना की है।

मेरे विचार से तो जैन कोई जाति नहीं थी। जैन एक सिद्धान्त था, जिसको मानने वाले जैन कहलाते हैं, वो हिन्दुओं व भारतीयों में से ही होते थे, वैसे अध्ययन करने से ऐसा प्रतीत होता है कि जैन सिद्धांत भी सनातन प्राचीन समय से ही चला आ रहा है जो इस देश की एक विशेष विचारधारा है।

जैन तीर्थंकरों की जन्मभूमि और कल्याण भूमि का सौभाग्य इसी देश को रहा और विशेष विचारणीय बात है कि जैन जितने भी तीर्थ हैं वे सभी इस क्षेत्र के अन्तर्गत हैं, जिनकी विशालता सर्वविदित है।

ओसिया नगर जो जोधपुर राज्य में है, वहां ओसिया माता का मन्दिर है, जिसकी मान्यता ओसवाल जैन तथा राजपूत दोनों में समान रूप से है। इतिहास बताता है कि ओसिया एक राजपूत रियासत थी। राजा मय प्रजा के जैन धर्म में दीक्षित हो गये, जब से ही ओसवाल जैन कहलाने लगे।

राजस्थान में जाकर अध्ययन कीजिये। वहां जैन व वैष्णव में कोई फर्क नहीं मालूम पड़ता। सब एक दूसरे के पूरक हैं। हर त्योहार मिले-जुले माने जाते हैं। राजस्थान के जैनियों के जन्म से लेकर मृत्यु तक के सारे संस्कार ब्राह्मणों द्वारा कराये जाते हैं, वो भी वैष्णव पद्धति द्वारा, यहां तक कि जैन मन्दिरों में भगवान् की पूजा के लिए ब्राह्मण ही पुजारी रखा जाता है।

उदयपुर मेवाड़ में जाकर देखिये, जहां हजारों घर जैन

होते हुये भी वैष्णव धर्म को ही मानते हैं, यह उनका राज्य धर्म रहा है। उनके घरों में जैन धर्म मानने वाली वहुयें हैं, लेकिन कोई फर्क नहीं पड़ता। वहुत से सनातन हिन्दू कहे जाने वाले कुटुम्बों में जैन धर्म को माना जाता है।

जैनियों के विवाह के कार्यों के पहले श्री गणेश जी की स्थापना की जाती है, जिन्हें वैष्णव आदि भगवान् मानते हैं। विवाह वेदी कुन्ड के समक्ष ब्राह्मण द्वारा वेद मंत्रों के उच्चारण के साथ हिन्दू पद्धति के माफिक ही विवाह संस्कार किया जाता है।

जैन वच्चों की जन्म कुण्डली तथा लग्नपत्रिका हिन्दू पद्धति से ही लिखी व भेजी जाती है।

राजस्थानी जैनियों के गोत्रों पर अगर आप ध्यान देंगे तो राजपूत और इनके गोत्र आपको प्रायः एक ही समान मिलेंगे। इतना ही नहीं औरतों व मर्दों के नाम भी मिलते-जुलते ही रहेंगे। और भी अगर देश के दूसरे प्रान्तों के जैनियों के नामों की लिस्ट की तरफ ध्यान दिया जाये तो अधिक नाम वैष्णव अवतारों के नाम पर ही रखे हुए मिलेंगे। नाम के साथ सिंह भी जोड़ा जाता है। सिंह शब्द राजपूतों के नाम के साथ भी रहता है।

जैनियों में चोटी रखना और तिलक लगाना भी तो हिन्दू विधि विधान का ही पूरक है। दोनों पक्ष पूर्व दिशा को ही मान्यता देते हैं। गंगा को पवित्र मानते हैं।

जैन मन्दिर व हिन्दू मन्दिरों की वनावट भी एक-सी ही होती है, मन्दिर के ऊपर गुमठ भिन्न कलाओं के साथ एक ही आकार वाली वनाई जाती है। उसके शिखर पर सोना, तांवा

व पत्थर के कलस चढ़ाये जाते हैं, ध्वज लहराया जाता है। अन्दर भगवान् के स्वरूप की मूर्ति को ऊंचे सिंहासन पर विराजमान किया जाता है। भगवान् को वस्त्र व सोने चांदी के आभूषण भी पहनाये जाते हैं, स्नान करने के वाद ही पूजन की जाती है। फल, फूल, मेवा, अक्षादि सामग्री पूजन में उपयोग की जाती है, मिष्ठान का प्रसाद वांटा जाता है। मन्दिरों में भी पूजन विधि एक ही समान होती है। घंटा-घड़ियाल दोनों जगह बजाये जाते हैं, आरती करने की विधि एक है।

भगवान् के समक्ष नतमस्तक होने की विधि एक-सी है। जैन व हिन्दू मालाओं में १०८ ही मणिकों की डालने की प्रथा है। कुछ विशेष मंत्रों को दोनों पक्षों में १०८ वार जपने का भी विधान है।

पूजा में सवसे पहले जल से मूर्ति का अभिशेष (स्नान) किया जाता है। कहीं-कहीं दूध, दही, घी, इक्षुरस व मिश्रण पदार्थों से स्नान कराया जाता है। वाद में जल चन्दन, अक्षत, पुष्प, नैवैद्य, दीप, धूप और फल आदि इनका उपयोग पूजन में किया जाता है।

पूजा के दो भेद माने गये हैं। पहला द्रव्य पूजा, दूसरा भाव पूजा। यह दोनों प्रकार की पूजा विधियां जैन व वैष्णव में आज भी प्रचलित हैं।

जैनियों में प्रचलित 'जुहार' शव्द का भारत में व्यापक प्रचार जैन संस्कृति के प्रभाव को स्पष्ट करता है। युगादि पुरुष भगवान् वृषभदेव के प्रणाम का द्योतक है। 'हा' का अर्थ है जिनके द्वारा सर्व संकटों का हरण होता है और 'र' का भाव है जो सर्व जीवधारियों के रक्षक हैं, इस प्रकार जिनेन्द्र गुण

वर्णन रूप 'जुहार' शब्द का भाव है। 'जुहार' शब्द का व्यवहार जैन बन्धु परस्पर अभिवादन में करते हैं। तुलसीदास जी की रामायण में 'जुहार' शब्द का अनेक बार उपयोग किया गया है। अयोध्याकाण्ड में लिखा है कि चित्रकूट की ओर जब रामचन्द्र जी गये, तब योग्य निवास भूमि को तजते समय पुरवासियों ने रघुनाथ जी से जुहार की है। 'लै रघुनाथहिं ठाउ देखावा, कहेउ राम सब भांति सुहावा। पुरजन करि जुहार घर आये, रघुवर संध्या करन सिधाये।'

भीलों ने भी रामचन्द्र जी से जुहार की है और अपनी भेंट अर्पित की है।

करहिं जुहार भेंट धरि आगे, प्रभुहिं विलोकहिं अति अनुरागे।
प्रभुहिं जोहारि बहोरि-बहोरि, वचन विनीत कहहीं कर जोरी॥

अयोध्यावासियों ने राम-वनवास के पश्चात् भरत जी के अयोध्या आगमन पर भी इस शब्द का प्रयोग किया है।

पुरजन मिलहिं न कहहिं कछु गंवहिं जोहारहिं जाहिं।
भरत कुशल पूछि न सकहिं, भय विषाद मन माहिं॥

पुरवासियों के द्वारा इस शब्द का प्रयोग जैन व वैदिक धर्मावलम्बियों के समन्वय का सूचक है।

विस्तृत और विशाल हिन्दू धर्म में अनेक सम्प्रदाय और मत हैं। शैव, शाक्त, वैष्णव, गाणपत्य, लिंगायत, बौद्ध, जैन, कबीरपन्थी और सिक्ख आदि खरबूज की कलियों की भांति बाहर से भिन्न-भिन्न दिखाई देते हुए भी भीतर से एक हैं।[1]

कुछ दिन हुए मध्यप्रान्त के अत्यल्प संख्यक जैनियों ने धारा सभाओं में प्रवेश करने के क्षुद्र स्वार्थ को लेकर अपने को

१—विजयययपता का—स्वामी श्रीरामचन्द्र वीरमहाराज—पृ० १८१

अहिन्दू सिद्ध करने का प्रचार किया था, किन्तु उनको सफलता नहीं मिली और नागपुर तथा जबलपुर में जब हिन्दू मुस्लिम दंगे होने लगे, तब उन्होंने अपने धन-जन की रक्षा के लिए स्वयं को हिन्दू होने की घोषणा कर दी। इसी प्रकार कुछ ब्राह्मणों ने भी जैनियों को नास्तिक कहकर अपनी विवेकहीनता का परिचय दिया था। वस्तुतः जैन धर्म हमारे वैदिक धर्म की एक शाखा है। जैनियों के आदि तीर्थंकर भगवान् ऋषभदेव जी (आदिनाथ) वैदिक सनातनियों के अवतार माने गये हैं। तब जैन धर्म और वैदिक धर्म मूलतः दो कैसे हो सकते हैं। वेद के मूल मन्त्र ॐ का जैन धर्म में वही आदर और सम्मान है जो एक ब्राह्मण के हृदय में। जैन मतावलम्बी भी शिखा और सूत्र धारण करते हैं तथा पुर्नजन्म और धर्म के दस लक्षणों को मानते हुए आर्य संस्कृति का स्वयं को एक अभिन्न अंग स्वीकार करते हैं।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि जैन धर्म हिन्दू धर्म की एक स्वतंत्र चिन्तन धारा है, जो इस देस के लाखों लोगों के लिए श्रद्धा का स्तंभ बनी हुई है।[1]

स्वर्गीय पं जवाहरलाल नेहरू ने भी इस बात को स्वीकार किया है कि जैन धर्म हिन्दू धर्म की एक शाखा है तथा जैन धर्म का एक बुनियादी सिद्धांत है कि सत्य हमारे विचारों से सापेक्ष है। यह एक कटोर नीतिवादी और अपरोक्षवादी विचार पद्धति है तथा इस धर्म में जीवन और विचार में तपस्या के

१—राष्ट्र धर्म—लखनऊ—तीर्थंकर—महावीर विशेषांक—श्री कृष्ण वल्लभ द्विवेदी—पृ० १

पहलू पर जोर दिया गया है। जैन धर्म जो स्थापित धर्म से विद्रोह करके उठा था और बहुत तरह से उससे भिन्न था, जाति की ओर सहिष्णुता दिखाता था और स्वयं उससे मिल-जुल गया था, यही कारण है कि यह आज भी जीवित है और हिन्दुस्तान में जारी है।[1]

आज हम विश्व हिन्दू धर्म के माध्यम से हिन्दू धर्म तथा संस्कृति पर चिन्तन करने के लिए एकत्र हुए हैं। आचार्य तुलसी ने इस मौके पर व्याख्यान देते हुए इससे आगे कहा था कि हम जो एकत्र हैं, उनमें वैदिक, जैन, बौद्ध, सिक्ख आदि अनेक धर्मों के प्रवक्ता हैं। सब प्रवक्ता हिन्दू धर्म के बारे में अपने विचार प्रस्तुत करेंगे। इस विषय में मुझे कई बार चिन्तन का अवसर मिला है। मेरे सम्मुख अनेक बार यह प्रश्न उपस्थित हुआ है कि जैन लोग हिन्दू हैं या नहीं ?

मैंने इस प्रश्न पर गहराई से चिन्तन किया। चिन्तन के पश्चात मैं जिस निष्कर्ष पर पहुंचा, वह मैंने प्रश्नकर्ताओं को बताया। आज मैं आप सबके सामने अपना विचार प्रस्तुत करता हूँ। मेरे चिन्तन का मुख्य विषय है, हिन्दू शब्द का अर्थ क्या है ? वैदिक का अर्थ स्पष्ट है जो वेदों का प्रामाण्य स्वीकार करता है, वह वैदिक है। जिन अर्थात तीर्थंकर की वाणी को जो प्रमाण मानता है, वह जैन है। बुद्ध का अनुगमन करने वाला बौद्ध है। पर हिन्दू न तो कोई शास्त्र है और न कोई व्यक्ति।

१—राष्ट्र धर्म—लखनऊ—तीर्थंकर महावीर विशेषांक—पं० जवाहर लाल नेहरू—पृ० २७

आरम्भ में हिन्दू शब्द किसी जाति या धर्म का वाचक नहीं रहा है। मेरे अभिमत में उसका सम्बन्ध भौगोलिक स्थिति से था। इसका उद्‌गम सिन्धु नदी से है। सिन्धु नदी के इस पार रहने वाले लोगों को उस पार के लोगों ने हिन्दू नाम दिया। यह सिन्धु का ही उपचारण भेद है। इस शब्द का उत्कर्ष हुआ और यह बहुत व्यापक बन गया। आज यह धर्म और संस्कृति के साथ भी सम्बद्ध है। किन्तु इस शताब्दी में हिन्दू शब्द की जो परिभाषायें लिखी गयी हैं, उनमें से कुछ परिभाषायें ऐसी हैं जो हिन्दू शब्द की व्यापकता को संकीर्ण बनाती हैं। वेद या अन्य किसी शास्त्र के साथ हिन्दू शब्द को जोड़ने का अर्थ है, उसे संकुचित बनाना। सब भारतीय धर्म किसी एक ही शास्त्र का प्रामाण्य स्वीकार नहीं करते हैं। इस स्थिति में उसे शास्त्र के साथ जोड़ना कैसे उपयुक्त हो सकता है?

इस चिन्तन के आधार पर मैंने प्रश्नकर्त्ताओं से कहा—हिन्दू का अर्थ यदि किसी अमुक शास्त्र को मानने वाला हो तो जैन हिन्दू नहीं हैं और यदि उसका अर्थ भारतीय सन्तति हो तो जैन हिन्दू हैं। भारतीय होना किसी सिद्धान्त या मान्यता पर आश्रित नहीं है। जो व्यक्ति भारत को अपनी मातृ-भूमि माने, वह भारतीय और शेष अभारतीय—यह परिभाषा मुझे तथ्य पर आधारित नहीं लगी। कोई व्यक्ति क्या मानता है इस आधार पर उसकी राष्ट्रीयता मान्य नहीं होती, किन्तु वैधानिक दृष्टि से वह जिस देश का नागरिक होता है, वही उसकी राष्ट्रीयता होती है। भारत की राष्ट्रीयता जिसे प्राप्त है, वह भारतीय है। इसी प्रकार हिन्दुस्तानी होने के कारण वह हिन्दू है।[1]

१—मेरा धर्म—केन्द्र और परिधि—आचार्य तुलसी पृष्ठ ५

जैन-दर्शन अथवा बौद्ध-दर्शन हिन्दू-दर्शन से भिन्न है, ऐसा मानकर साम्प्रदायिक आचरण करना एक बहुत भयंकर भूल व घृणित दुराग्रह है। भारतीय समाज और दर्शन में जब तमाम कमजोरियां आ गयी थीं तो ऐसे समय में भगवान् महावीर ने बहुप्रचलित दर्शन में विभिन्न प्रकार के सुधार किये तथा एक परिष्कृत विचारधारा समाज को दी। यही कारण है कि हिन्दू-दर्शन से जैन-दर्शन को भिन्न नहीं माना जा सकता।[1]

यह असम्भव नहीं कि जैन आचार्यों के विश्लेषण को वैष्णव अस्वीकार करें। उसी तरह वैष्णव मान्यताओं को भी जैन आचार्य स्वीकार न करें। लेकिन यह विचार भेद जैनों को हिन्दुओं से अलग नहीं कर सकता। दोनों एक ही नदी की दो धारायें हैं, वे उसी तरह दो नजर आती हैं, जैसे समुद्र से मिलने से पूर्व गंगा सहस्त्र धाराओं में बहती है। आदि और अन्त दोनों स्थितियों में वे धारायें एक हैं, नाम भेद तो क्षणिक है। जैनियों को हिन्दू विरोधी बताना उसी प्रकार है, जिस प्रकार सूर्य पर कीचड़ उछालना। जैन धर्म हिन्दू धर्म का सहोदर अंग माना जाता है, जैन धर्म की प्रगति को हिन्दू धर्म की प्रगति से अलग नहीं समझा जा सकता।[2]

इतिहास के अवलोकन से यह पता चलता है कि प्राचीन काल में जैन जाति नहीं थी, पर इस प्रकार का धर्म अवश्य था। जितने तीर्थंकर हुये हैं सभी इसी हिन्दू जाति में उत्पन्न

१—अग्नि परीक्षा ? चिन्तन का आव्हान—पृ० ३०—दैनिक जागरण कानपुर ६—११—७०

२—नवभारत टाइम्स, दिल्ली (अ० परि० चि० का आ० पृष्ठ ३२)

हुए हैं। एक उपासना काण्ड के अतिरिक्त जैनों के सारे रीति-रिवाज, जीवन-मरण, शादी-विवाह, हिन्दू विधि विधानों के अनुसार ही होते हैं। ये लोग भी आदि अनादि कालों से भारतीय ही हैं।[१]

भारतवर्ष जैनों की जन्म-भूमि है। जन्म-भूमि को स्वर्ग से भी अधिक मान्यता की जाती है। चक्रवर्ती भरत के नाम से इस देश का भारत नामकरण हुआ है। जैन परम्परा में सर्वप्रथम आता है। वैदिक परम्परा में वे आठवें अवतार भगवान् ऋषभदेव के पुत्र थे। ऐसी दोनों ही परम्पराओं की मान्यता है। पुराण साहित्य में तो इस विषय के अनेक प्रमाण मिलते हैं, जिनमें ऋषभदेव पुत्र भरत के नाम से ही इस देश का नाम भारतवर्ष पड़ा।

इसमें सन्हेह नहीं कि न केवल भारतीय दर्शन के विकास का अनुगमन करने के लिए अपितु भारतीय संस्कृति के स्वरूप के उत्तरात्तर विकास को समझने के लिये भी जैन दर्शन का अत्यन्त महत्व है। भारतीय विचारधारा में अहिंसावाद के रूप में अथवा परमत सहिष्णुता के रूप अथवा समन्वयात्मक भावना के रूप में जैन-दर्शन और जैन विचारधारा की देन जो है उसको समझे विना वास्तव में भारतीय संस्कृति के विकास को नहीं समझा जा सकता।[२]

उपाध्याय अमर मुनि ने लिखा है कि वस्तु सत्य के सम्पूर्ण स्वरूप को न हम एक साथ पूर्ण रूप से देख सकते हैं न व्यक्त

१—अग्नि परीक्षा—एक समीक्षात्मक अध्ययन (संकलन) पृष्ठ ७

२—राष्ट्र धर्म मासिक : डा० मंगलदेव शास्त्री, डी० पी० आंक्सन पृ० २३

कर सकते हैं। फिर अपने दर्शन को एकान्तरूप से पूर्ण यथार्थ और अपने कथन को एकान्त सत्य करार देकर दूसरों के दर्शन और कथन को घोषित असत्य करना क्या सत्य के साथ अन्याय नहीं है ?

इस तथ्य को हम एक अन्य उदाहरण से भी समझ सकते हैं। एक विशाल एवं उत्तुंग सुरम्य पर्वत है, समझ लीजिये हिमालय है। अनेक पर्वतारोही विभिन्न मार्गों से उस पर चढ़ते हैं और भिन्न-भिन्न दिशाओं की ओर से उसके चित्र लेते हैं। कोई पूरब से तो कोई पश्चिम से, कोई उत्तर से तो कोई दक्षिण से। यह तो निश्चित है कि विभिन्न दिशाओं से लिए गए ये चित्र परस्पर एक दूसरे से कुछ भिन्न ही होंगे। फलस्वरूप देखने में एक दूसरे से विपरीत ही दिखाई देंगे। इस पर यदि कोई हिमालय की एक दिशा के चित्र को सही बताकर अन्य दिशाओं के चित्रों को झूठा बताये या उन्हें हिमालय के चित्र मानने से ही इन्कार कर दे तो उसे आप क्या कहेंगे ?

वस्तुतः सभी चित्र एक पक्षीय हैं। हिमालय की एक देशीय प्रतिच्छवि ही उनमें अंकित है, किन्तु हम उन्हें असत्य और अवास्तविक तो नहीं कह सकते। सब चित्रों को यथाक्रम मिलाइए तो हिमालय का पूर्ण रूप आपके सामने उपस्थित हो जाएगा। खण्ड-खण्ड हिमालय का एक अखण्ड आकृति ले लेगा और इसके साथ हिमालय को दृश्यों का खण्ड-खण्ड सत्य एक अखण्ड सत्य की अनुभूति को अभिव्यक्ति देगा।

यह बात विश्व के समग्र सत्यों के सम्बन्ध में। कोई भी सत्य हो, उसके एक पक्षीय दृष्टिकोणों को लेकर अन्य दृष्टिकोणों का अपलाप या विरोध नहीं होना चाहिए, किन्तु उन परस्पर विरुद्ध प्रतीत होने वाले दृष्टिकोणों के यथार्थ समन्वय का प्रयत्न

होना चाहिए ।[1]

इसी संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि जनवरी १९६६ में विश्व हिन्दू परिषद का सम्मेलन प्रयाग में गंगा-यमुना के संगम पर हुआ था, जिसमें व्यापक स्तर पर हिन्दुओं ने अभूतपूर्व ढंग से अपना योगदान दिया । इस तरह का सम्मेलन निकटभूत या आधुनिक काल में देखने को नहीं मिलता । इस सम्मेलन में 'हिन्दू' शब्द वैदिक, बौद्ध, जैन, सिक्ख, लिंगायत आदि सब पन्थों का समावेश करने वाले 'समाज' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है । लगभग २००० वर्ष पूर्व बौद्धों के ऐसे सम्मेलन (संगीतिका) हुआ करते थे । हिन्दुओं की विद्वत सभायें इसके पहले भी होती थीं, अब भी होती हैं, परन्तु समस्त हिन्दुओं का इस ढंग का यह पहला ही सम्मेलन हुआ और इसलिए इसका असाधारण महत्व भी है ।[2]

विश्व में ज्ञान परम्परा की रक्षा, प्रचार तथा उसके आदर्श स्थापना के लिए वैष्णव धर्म दशज्ञानावतार माने गए हैं, जिनमें छटवें स्थान पर 'ऋषभदेव' को माना है (जिन्हें जैन धर्म में प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ स्वामी माना गया है) ।[3]

इनके १०० पुत्र थे, जिनमें ज्येष्ठ पुत्र (क्षत्रिय) भारत का अधिपति हुआ । उससे कनिष्ठ ८१ पुत्र महाश्रोत्रीय (ब्राह्मण)

१-राष्ट्र धर्म मासिक : डा० मंगलदेव शास्त्री, डी०पी० आंक्सन पृ० ७२

२-हिन्दू समाज संघटन और विघटन-लेखक डा० पुरुषोत्तम-गणेश सहस्त्रबुद्धे पृ०-१

३-हिन्दू धर्म का क ख : तनसुखराय गुप्त-पृ० २५

हुए ।[1]

जैन धर्म के अनुयायी केवल भारत में हैं। अनेक जैन अत्यन्त सम्पन्न हैं और इनमें निर्धन शायद ही कोई हो। निहित स्वार्थ रखने वाले व्यक्तियों के यत्नों के बावजूद जैन व हिन्दू धर्म अत्यन्त निकट हैं। जैनों में नास्तिकता समाप्तप्रायः है। जैन व हिन्दू (अग्रवाल) परस्पर विवाह सम्बन्ध भी स्थापित करते रहते हैं।[2]

जैन धर्म के प्रसिद्ध तीर्थंकर ऋषभदेव भी उसके धर्म में एक अवतार हैं। वस्तुतः एवं तत्वतः ऋषभदेव तथा उनके पुत्र भरत को जैन धर्म में आबद्ध नहीं किया जा सकता। पुराणों, विशेषतः भागवत के अनुशीलन से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है। ऋषभदेव हिन्दू धर्म से जैन धर्म में लाये गये या जैन धर्म से हिन्दू धर्म में, इसका निश्चित उत्तर देना कठिन है।[3]

ऐसी परिस्थिति में यह मान लेना उचित ठहरता है कि ऋषभदेव हिन्दू थे, कारण दोनों पक्षों ने अपनी-अपनी मान्यता दे रखी है।

आधुनिक काल—वेद हिन्दू धर्म के इतिहास का सहज काल था, आदि काल था। पुराण-काल में जैन एवं बौद्ध धर्मों से संघर्ष हुआ, किन्तु उदारता एवं शालीनता के साथ, क्योंकि ये दोनों धर्म मूलतः भारतीय थे, सारतः हिन्दू धर्म के विकास-सोपान थे। तत्वतः शान्ति अहिंसा-मय चिन्तन मनन के परिणाम

१—हिन्दू समाज—संघटन और विघटन : डा० पुरुषोत्तम गणेश सहस्त्रबुद्धे—पृ० ५६

२—हिन्दू धर्म : राम प्रसाद मिश्र—पृ० १०

३—हिन्दू धर्म : राम प्रसाद मिश्र-पृ० २१

थे। यह पारस्परिक संघर्ष सहोदरों का संघर्ष था।[1]

स्वयं वैष्णव होता हुआ भी महाराज कृष्ण देवराय, हिन्दुओं को सभी सम्प्रदायों (बहुसंख्यक वैदिक पक्ष और अल्प संख्यक जैन, लिंगायत महानुभाव आदि विविध पन्थों) के साथ सहिष्णुता एवं परस्पर के विरोधों को यथा सम्भव टालकर सामन्जस्य कृति से ही बरतता और इस तरह समग्र हिन्दुओं के बीच एकात्मक की भावना को भली-भांति संजोता रहता। विजयनगर राज्य की संस्थापना के साथ शंकराचार्य श्री विद्याचरण्ड स्वामी, सायणाचार्य आदि धुरन्धर नेताओं ने समता और सहिष्णुता की ऐसी नैर्वन्धिक राजनीति अपनायी कि हिन्दुओं के सभी पन्थों में सहसा परस्पर किसी भी तरह का कलह उपस्थित न हो सके। जन-साधारण में धर्म प्रचार द्वारा भी स्वधर्माभिमान और स्वराष्ट्राभिमान की यही एक भावना सुदृढ़ की जाती थी कि 'हम सभी एक हिन्दू हैं।'[2]

गुप्तवंशीय सम्राट विक्रमादित्य जिनकी राजधानी उज्जिगिनी थी, अपने पराक्रम को गौरवान्वित करने हेतु संवत् प्रारम्भ किया जो विक्रम संवत् के नाम से आज भी वैष्णव व जैनों के यहां अपने आर्थिक, धार्मिक व सामाजिक कार्यों में विक्रम संवत् लिखा जाता है।

हमें पूरी आशा है कि अब सांस्कृतिक क्षेत्र में भी, अपनी-अपनी स्वतन्त्र सत्ता या पृथक संस्कृति का अभिनिवेश या दुरभिमान रखने वाले, हमारे विभिन्न सम्प्रदाय अपने को एक ही व्यापक समन्वयात्मक भारतीय संस्कृति का अंग समझने

१—हिन्दू धर्म : राम प्रसाद मिश्र—पृ० ७९

२—भारतीय इतिहास के छः स्वर्णिम पृ०—तृतीय भाग—पृ० १०१

लगेंगे।

व्यापक भारतीय संस्कृति के साथ विभिन्न सम्प्रदायों का वास्तव में ऐसा ही सम्बन्ध है। इसी भावना की वास्तविक अभिव्यक्ति और स्पष्ट अनुभूति ही भारतीय संस्कृति की विचार-धारा का अभिप्राय है।

भारतीय एक राष्ट्रीयता की पुष्टि के लिए यह परमावश्यक है कि हमारे विभिन्न सम्प्रदायों में समष्टि-दृष्टि-मूलक व्यापक भारतीय संस्कृति के आधार पर पारस्परिक सच्ची सद्भावना और सामंजस्य की प्रवृत्ति बढ़ायी जाए। इसके लिए आवश्यक है कि प्रथम तो हमारे विभिन्न सम्प्रदायों में एक दूसरे के प्रति समादर और सहिष्णुता की भावना हो और दूसरे हम उन सम्प्रदायों को भगवती गंगा की तरह प्रगतिशील समन्वयात्मक भारतीय संस्कृति का पूरक ही समझें। इस भावना को स्थापित करने की आवश्यकता है। विभिन्न सम्प्रदायों के उत्कृष्ट साहित्य को भारतीय संस्कृति की अविच्छिन्न धारा से सम्बद्ध मानते हुए उसे अपनी राष्ट्रीय सम्पत्ति और अपना दाय समझें और उससे लाभ उठायें।

उनके अपने-अपने महापुरुषों को सबका पूज्य और मान्य समझें। अपने विचारों को साम्प्रदायिक परिभाषिकता से निकाल कर उनके वास्तविक अभिप्राय और लक्ष्य को समझने का यत्न करें। दूसरे शब्दों में प्राचीन ग्रंथों के वचनों के शब्दानुवाद के स्थान में भावानुवाद की आवश्यकता है।

जैन मत तथा ब्राह्मण धर्म—इस्लाम या ईसाइ धर्म के समान जैन मत को वैदिक धर्म से पूर्णतः भिन्न मानना गलत है। उसने पुराने धर्म के दोषों को सुधारने की कोशिश की। जैन मत ब्राह्मण-धर्म के यज्ञ तथा पशु-बलि के विरुद्ध एक आन्दोलन था।

उसका प्राचीन धर्म से नाता टूटा न था। फर्क सिर्फ इतना ही है कि हिन्दू धर्म के कुछ सिद्धान्त, जैसे कि ईश्वर को जगत का निर्माण करने वाला मानना, वेदों को सर्वश्रेष्ठ समझना और यज्ञ तथा पशु-बलि में विश्वास रखना, आदि का जैन मत ने समर्थन नहीं किया और ब्राह्मणों की प्रधानता मानने से इन्कार कर दिया। परन्तु इस मतभेद के अतिरिक्त दोनों मतों में बहुत समानता है। दोनों कर्म, पुनर्जन्म तथा मोक्ष के सिद्धान्तों को स्वीकार करते हैं।[1]

'जैन हिन्दू कैसे ? प्राचीन वैदिक काल से ही जैनियों के पितरों की परम्परागत पितृभू भारत भूमि ही है तथा उनके तीर्थंकर आदि धर्म गुरुओं ने उनके जैन धर्म की स्थापना इसी भारत भूमि में की होने से यह भारत भूमि उनकी पुण्यभू भी है। इस अर्थ में तथा केवल इसी अर्थ में हमारे बहुसंख्यक जैन बन्धु स्वेच्छा से स्वतः को हिन्दू मानेंगे। क्योंकि यह ऐतिहासिक सत्य है एवं उनमें से जिन लोगों का ऐसा विश्वास है कि उनका धर्म वैदिक धर्म की शाखा न होकर पूर्णतः स्वतन्त्र या अवैदिक धर्म है, उनकी इस धारणा को भी प्रस्तुत परिभाषा से तनिक भी ठेस नहीं पहुंचती। जिस काल में हिन्दू अर्थात् वैदिक, ऐसा हिन्दू शब्द का भ्रान्तिपूर्ण अर्थ माना जाता था, तब भी ऐसे स्वतन्त्र धर्ममतवादी जैनियों को उस विशिष्ट अर्थ में स्वयं को हिन्दू कहलाने में विषमता का अनुभव होना स्वाभाविक ही था।

हिन्दू समाज में व्यवहार के विषय में कुछेक नियम स्वीकार किये जाते रहे हैं। उदाहरण के रूप में नित्य स्नान करना, पूजा,

---

१–हिन्दुत्व के पंचप्राण: विनायक दामोदर सावरकर–पृ० २०

उपासनादि नित्य कर्म करना, भोजन करते समय हाथ-मुख धोकर बैठना, भोजन के पूर्व और अन्त में कुल्ला करना, बैठकर भोजन करना, वे सब बातें जैनों में भी विद्धमान हैं। वस्त्र, आभूषण, खान-पान व वैवाहिक संस्कार, पूजा-पाठ की विधियां, परिवार तथा परिवार के बाहर के व्यक्तियों से अभिवादन, आदि के सभी नियम तथा उनके मूलभूत लक्षण हिन्दुओं और जैनियों में हमेशा से समान रहे हैं।

भारत में जैन धर्म कोई नया मार्ग नहीं है। हिन्दू संस्कृति के प्रतीक स्वरूप बहुत सी समानता इसमें देखी जा सकती हैं।

पुष्प प्रतीक :—कमल को पुष्पों में सर्वोपरि माना गया है। जैन धर्म आगमों में कमल पुष्प की कई स्थानों पर उपमा दी गई है। कहीं-कहीं मन्दिरों में जैन मूर्तियों का आसन कमल पर ही दिखाया गया है। मन्दिरों के शिखर पर कलश लगाने के पूर्व कमल पुष्प का आकार बनाया जाता है।

शस्त्र प्रतीक :—भारतीय शस्त्रों में तलवार, कटार का भी अपना प्रमुख स्थान है। जैनों के दुल्हे (वींद) जब व्याहने जाते हैं तो हर समय शरीर पर लटकाए रहते हैं और वधू पक्ष के द्वार पर पहुंचकर तो रन मारने का दस्तूर तलवार से ही करते हैं। वैसे दशहरे पर शस्त्रों की पूजा भी की जाती है। छड़ी भी एक प्रकार का शस्त्र ही है, जिसे कुछ जैन साधु हाथ में रखते हैं। चांदी की छड़ी का उपयोग भी धार्मिक जलूस के साथ किया जाता है।

वाद्य प्रतीक :—वाद्यों की ध्वनि (सुर) को मंगल सूचक माना जाता है। जैनों के प्रत्येक धार्मिक तथा सामाजिक कार्यों में वाद्यों को मान्यता तो प्रदान की ही गई है, मन्दिरों में भी घन्टा, झांजें, हारमोनियम, ढोल आदि वाद्यों का उपयोग किया

जाता है।

वृक्ष प्रतीक :—आम, केला, तुलसी, वट, पीपल, नीम आदि वृक्षों को जैनों में भी विभिन्न अवसरों पर पूजा के समय प्रयुक्त किया जाता है। मंगल कार्यों में तथा तीज-त्यौहारों पर आम के पत्तों का वन्दनवार बांधा जाता है।

वेश प्रतीक :—शिखा (चोटी) यज्ञोपवीत, तिलक, माला, केसरिया वस्त्र आदि वेश-प्रतीक समान रूप से जैनों में भी पाये जाते हैं। शिखा तो पहले सभी जैन रखते थे, यज्ञोपवीत अब भी दिगम्बर जैनों में कुछ लोग पहिनते हैं। पूजन के बाद तिलक लगाया जाता है। १०८ मणियों से युक्त माला द्वारा जाप किया जाता है। पूजन के समय केसरिया रंग से रंगे हुए वस्त्र पहने जाते हैं।

संकेत प्रतीक :—जैन समाज में भी मुद्राओं का महत्व है। मूर्ति के समक्ष, वन्दना के समय, सामायक के समय, शस्त्र स्व-ध्याय के समय, आरती के समय, गुरु के समक्ष एवं प्रार्थना आदि के समय भिन्न-भिन्न मुद्राओं का प्रयोग किया जाता है। इन्हीं मुद्राओं को संकेत प्रतीक कहा गया है।

उपरोक्त सभी प्रतीक हिन्दू संस्कृति और उसकी समन्वित अर्थवत्ता को प्रमाणित करते हैं। जबकि अहिन्दू लोगों में इन प्रतीकों का कोई महत्व नहीं है।

भारतीय संस्कृति का दूसरा नाम हिन्दू संस्कृति है। अक्सर यह प्रश्न उठता है कि क्या भारतीय संस्कृति और हिन्दू संस्कृति मूलतः एक ही है। ध्यान से देखा जाए तो भारतीय संस्कृति का ताना वही है, जिसे आर्य या हिन्दू नाम से उपलक्षित किया जाता है, बाने के सूत इधर-उधर से आए हैं, पर वे सब ताने

पर ही आश्रित हैं। जिस प्रकार गंगा में बहुत सी छोटी-बड़ी नदियां मिलती हैं, किन्तु मिलने पर जो पयस्विनी बनती है वह गंगा ही कही जाती है। उसी प्रकार भारतीय संस्कृति को हिन्दू संस्कृति कहा जाता है। जिस प्रकार भारतीय दर्शन का नाम लेने से वैदिक, बौद्ध, जैन, हिन्दू इत्यादि दर्शनों का बोध होता है, उसी प्रकार भारतीय संस्कृति कहने से वैदिक, बौद्ध, जैन इत्यादि विचार-धाराओं का समावेश हो जाता है। वस्तुतः भारतीय संस्कृति व हिन्दू संस्कृति के सम्बन्ध में किसी प्रकार का भ्रम नहीं खड़ा करना चाहिये। वह एक दूषित मनोवृत्ति का परिचायक होगा। भारतीय संस्कृति और हिन्दू संस्कृति दोनों समानार्थ सूचक हैं।[१]

अतः सांस्कृतिक उद्भव और कालक्रम के उत्तरोत्तर विकास के परिणाम स्वरूप आज ये स्वीकार किया जाता है कि हिन्दू जैसे व्यापक और भारतीय संस्कृति के अन्तर्गत जैन धर्म के अनुयायियों को उससे पृथक मानना न्यायोचित नहीं।

१—कल्याण—अक्टूबर १९५४—पृ० १३५४—लेखक डा० परमानन्द मिश्र आनन्दराज

हिन्दू राष्ट्रीयता का प्रतिनिधि है, जाति और धर्म नहीं

एक बार, एक वर्ष पूर्व आचार्य श्री तुलसी ने कहा था—वे हिन्दू हैं जो हिन्दुस्तान के नागरिक हैं। हिन्दू शब्द का अर्थ राष्ट्रीयता के संदर्भ में किया गया है। कुछ विद्वानों ने इसका अर्थ जाति और धर्म के संदर्भ में किया है। राष्ट्रीयता के संदर्भ में किया जाने वाला अर्थ मूल भावना का स्पर्श करता है और प्राचीन है। जाति और धर्म के संदर्भ में किया जाने वाला अर्थ पल्लवग्राही और अर्वाचीन है।

इन दोनों की ऐतिहासिक पृष्ठ-भूमि का अध्ययन करना आवश्यक है। पहले हम दूसरे अर्थ की ऐतिहासिक पृष्ठ-भूमि पर विचार करें, हिन्दुस्तान में हजारों वर्षों से चार वर्ण और अनेक जातियां रही हैं। मनुष्य जाति एक है। इस अभेदात्मक सत्ता के उपरान्त भी उसकी भेदात्मक सत्ता जीवित रही है। फलतः मनुष्य अनेक जातियों में विभक्त रहे हैं। सारी जातियों का समाहार ब्राह्मण, क्षत्रीय, वैश्य और शूद्र चारों वर्णों में होना

था। उनका विस्तार हजारों-हजारों जातियों में हुआ। उनमें हिन्दू नाम की कोई जाति नहीं थी। जाति के साथ-साथ हिन्दू शब्द का योग विदेशी आक्रमणों की मध्यावधि में हुआ। हिन्दुस्तान धर्मों का समाहार है, वैदिक, जैन और बौद्ध इन तीन धाराओं में होता हुआ उसका विस्तार सैंकड़ों शाखाओं, प्रशाखाओं में हुआ। उनमें हिन्दू नाम का कोई धर्म नहीं है। धर्म के साथ हिन्द शब्द का योग बहुत ही अर्वाचीन है।[1]

१--समस्या का पत्थर अध्यात्म की छैनी--रचेता मुनि नथमल जी

धार्मिक परिप्रेक्ष्य
और
जैन तथा हिन्दू धर्म

जिज्ञासा

● आप किस धर्म को मानते हैं···?

—जैन धर्म को

● जैन की जाति क्या है···?

—अनेक हैं···ओसवाल, अग्रवाल, पोपवाल, परवार आदि···

● क्या धर्म परिवर्तन की स्वीकृति है आपको···?

—हां···जैन से वैष्णव और वैष्णव से जैन की दीक्षा मान्य है। हमारे तीर्थंकर भी तो पूर्वतः वैष्णव धर्मानुयायी थे···

● क्या आपके सन्तों में दूसरी जाति के भी सन्त हैं···?

—हां

● क्या आपके मन्दिरों में जैन ही पुजारी होता है···?

—ऐसा अनिवार्य नहीं है, ब्राह्मण भी पुजारी होते हैं···

- आपकी माला में कितनी मणियां होती हैं···?

—कुल १०८ तथा ३ सुमेर की मणियां···

- आपके प्राचीन मन्दिरों की समन्व-कला कैसी है···?

—जैन व वैष्णव मूर्तियों की एक ही मन्दिर में स्थापना···

- जैन शिल्प में श्री कृष्ण-अंकन का समावेश···

—जैन मूर्तियों और मन्दिरों की वैष्णवों द्वारा पूजा···

- आपकी अन्य व्यावहारिक मान्यतायें···?

—प्रत्येक शुभ कार्य में गणेश पूजन, स्वास्तिक, ओम का माहात्मय···

—राम और कृष्ण को अवतार मानना, सीता को सती स्वीकारना···

—पूजन विधि वैष्णवों के समान

—कर्म और फल के सिद्धान्तों में विश्वास···

जैन साहित्य में श्री राम और कृष्ण

जैन साहित्य में राम और कृष्ण की कथा रूपान्तर से मान्य रही है। राम की कथावस्तु को जैन विद्वानों ने भी पुराणों, काव्यों एवं नाटकों आदि के रूप में आवद्ध किया है।

विक्रम संवत् ६० के लगभग विमल हरि ने प्राकृत में 'पउम चरिउ' लिखा। इसका सम्पादन जर्मन विद्वान डा० याकोबी ने किया था। श्री नाथूराम प्रेमी के अनुसार यह ग्रन्थ श्वेताम्बर और दिगम्बर सम्प्रदायों की उत्पत्ति से भी पूर्व का है, क्योंकि इनकी उत्पत्ति विक्रम संवत् १३६ है। किसी विद्वान ने चौंतीस हजार वाले श्लोकों का 'सीया चरिय' भी प्राकृत में लिखा है, जो प्राचीन माना गया है।

अपभ्रंश भाषा में महाकवि स्वयंभू ने बारह हजार श्लोकों का 'पउम चरिउ' रचा। उसका रचना-काल विक्रम संवत् ७३४ माना है। राम कथा पर प्रकाश डालने वाला प्राक्कृत भाषा का दूसरा ग्रन्थ 'तिसट्ठिमहापुरिस गुणालंकारू' है। यह आदि पुराण और उत्तर पुराण, दो खण्डों में विभाजित है। उत्तर-पुराणपद्म-पुराण में 'रामायण' का प्रमुख स्थान है। इसके रचयिता कविवर पुष्पदन्त हैं। इसकी रचना सम्वत् ९०३ में हुई। कविवर रविषेण ने इसका अवतरण संस्कृत भाषा में किया है।[1]

१—आशा विवेकी : अग्नि परीक्षा कृति और कसौटी—पृष्ठ ३०-३१

हिन्दू और बौद्ध साहित्य में राम-कथा तीन रूपों में उपलब्ध हो सकी है। वाल्मीकि रामायण, अद्भुत रामायण और बौद्ध जातक, जबकि जैन साहित्य में इसके दो रूप मिलते हैं। पहला पउम चरिउ और पद्मचरित तथा दूसरा गुणभद्राचार्य का उत्तर-पुराण। जैन रामायण के रूप में पउमचरित की प्रसिद्धि हमें ज्ञात ही है, जबकि उत्तर-पुराण की राम-कथा श्वेताम्बर सम्प्रदाय में प्रचलित नहीं है, तथापि उत्तर-पुराण की कथा गुरु परम्परा के भेद से स्वतन्त्र रूप में विकसित हुयी तथा अनेक कवियों ने इसे भी आदर्श मानकर महाकवि पुष्पदन्त की भांति काव्य रचना की।

वस्तुतः राम-कथा भारतवर्ष की सर्वाधिक लोकप्रिय कथा है और इसकी अन्य दो-तीन परम्पराओं की भांति जैन साहित्य में भी इसे देखा जा सकता है। आचार्यों की इस परम्परा का संकेत 'पउमचरिय' के लेखक ने भी दिया है।

राम-कथा एशिया के सभी देशों में देखने को मिलती है, पर श्रीराम की महानता इसलिए नहीं है कि उन्होंने कोई युद्ध जीता, पर वे तो जितेन्द्रिय होने से अपने गुणों के कारण महान् थे। जिस प्रकार उनका बाहरी आचरण सादगी का था, वे अन्तरंग से भी उतने ही निर्मल थे। जिस समय श्रीराम को उनके पिताजी ने वनवास दिया तो उन्होंने कहा कि पिताजी द्वारा दण्डकारण्य का मुझे राज्य दिया गया है। यह कहकर उन्होंने अपने पिता की आज्ञा को शिरोधार्य किया। श्री राम जन्म से क्षणिक सम्यक दृष्टि थे।[1]

वैदिक धर्म की तरह जैन धर्म में भी राम और सीता पूज्य

१–विद्यानन्द मुनि : मंगल प्रवचन–पृष्ठ २२०

स्थानीय हैं। भगवान् राम को जहां मर्यादा पुरुषोत्तम, अर्हत, सर्वज्ञ और सर्वदर्शी माना गया है, वहां सीता को सोलह महासतियों में प्रमुख पतिव्रता, दृढ़ धर्मी और सत्य और शील के लिए प्राणों को बलिदान करने वाली माना गया है।[1]

इसके अतिरिक्त हेमचन्द्राचार्य का त्रिषष्टि शलाका चरिता-संगत् रामचरित, स्वयंभ्र का अपभ्रंश पउमचरिय और मुनि केश-राज का रामरास आदि अनेक जैन रामायण हैं, जिनमें राम का उदात्त चरित्र वर्णन है।

सभी रामायणकारों ने श्रद्धा भरे शब्दों में राम का गुण-गान किया है। रविषेणाचार्य राम को उर्जित चरित्र, अनन्तबली, अनन्त गुणगेह, गतविकृति, त्रिभुवन, परमेश्वर आदि भक्ति भरित शब्दों में श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए कहते हैं---जिनका उज्ज्वल यश तीन लोक में फैला हुआ है, जो निर्मल चरित्र थे, उन राम को प्रणाम करो।[2]

अतः यह निर्विवाद है कि जैन साहित्य में प्रकारान्तर से राम-कथा की एक प्राचीन परम्परा उसी रूप में विद्यमान रही है, जिस रूप में मर्यादा पुरुषोत्तम राम को अन्यत्र मान्यता मिली।

इसी भांति आत्मा के अनन्त ज्ञान दर्शन और आनन्द को प्राप्त कर प्राणीमात्र के कल्याण के लिए आध्यात्म तथा धर्म का संदेश प्रचारित करने वाले महापुरुषों में जैन तीर्थंकर भगवान् महावीर अरिष्ठनेमि और पुरुपोत्तम श्री कृष्ण का

१—मुनि श्री रूपचन्द्र : अग्नि परीक्षा : एक समीक्षा—पृष्ठ—२७—३०

२—उपा० अमर मुनि : अग्नि परीक्षा : कृति और कसौटी—पृष्ठ—२

भी विशेष महत्व है।

राजा समुद्रविजय के पुत्र भगवान् अरिष्ठनेमि थे और समुद्रविजय के लघु भ्राता वासुदेव के पुत्र श्रीकृष्ण थे। जैन आगमों में इन दोनों के घनिष्ठ सम्बन्ध के अनेकों उल्लेख प्राप्त हैं।[१]

श्री देवेन्द्र मुनि के अनुसार भगवान् अरिष्ठनेमि और कर्मयोगी श्रीकृष्ण ये दोनों ही भारतीय संस्कृति के जाज्वल्यमान सितारे हैं। दोनों संस्कृति के सजग प्रहरी ही नहीं अपितु संस्कृति और सभ्यता के निर्माता हैं। जैन संस्कृति में जिस प्रकार भगवान् अरिष्ठनेमि की गौरव गाथायें मुक्त कण्ठ से गायी गयी हैं, उसी प्रकार स्नेह की स्याही से डुबो कर श्रीकृष्ण के अनलोद्धत व्यक्तित्व को भी उदंकित किया गया है। अन्तकृत्दशांग समवायांग, णायाअम्मकहाओ, स्थानांग, निरियापलिका, प्रश्नव्याकरण, उत्तराध्ययन आदि में उनके 'श्री कृष्ण' महान व्यक्तित्व के दर्शन होते हैं। वे अनेक गुण सम्पन्न और सदाचारनिष्ठ थे। अत्यन्त ओजस्वी, तेजस्वी, वर्चस्वी और यशस्वी महापुरुष थे। उन्हें ओघबली, अतिबली, महाबली, अप्रतिहत और अपराजित कहा गया है। उनके शरीर में अपार बल था। वे महारत्न वज्र को भी चुटकी में पीस डालते थे। वसुदेव हिण्डी, देवकी लम्बक, चउपन्न महापुरिय चरियं, भवभावना, कण्हचरित, हरिवंश पुराण, उत्तर-पुराण, त्रिषष्ठिशलाका पुरुष चरित्र, त्रिषष्ठि शलाका पंचाशिका, त्रिषष्ठिशलाका पुरुष विचार, शत्रुन्जय माहात्म, आदि ग्रन्थों में हिन्दी, गुजराती, राजस्थानी, कन्नड़

१–अगरचन्द नाहटा : भगवान् अरिष्ठनेमि और कर्मयोगी कृष्ण : एक अनुशीलन भूमि

आदि प्रान्तीय भाषाओं के माध्यम से जैन लेखकों द्वारा श्रीकृष्ण के जीवन प्रसंगों पर विपुल साहित्य लिखा गया है। साथ ही उल्लेखनीय है द्विसंधान या राघवपाण्डवीय महाकाव्य, जिसके रचयिता धनन्जय हैं। इसमें १८ सर्ग हैं, इसके प्रत्येक सर्ग के प्रत्येक पद से दो अर्थ निकलते हैं, जिनसे एक अर्थ में रामायण और दूसरे अर्थ में महाभारत की कथा कुशलता से लिखी गई है। दूसरे शब्दों में कहा जाए तो एक अर्थ में राम तथा दूसरे अर्थ में कृष्ण कथा का सृजन होता है।[1]

कर्मयोग और लोक धर्म की मौलिक जीवन दृष्टि को आध-यात्म की सार्थक सचेतना से अनुप्रेरित कर भारतीय संस्कृति को एक सर्वथा नयी दिशा प्रदान करने वाले श्री कृष्ण का स्थान जैन साहित्य में भी सर्वोच्च है। इसी कारण जैन साहित्य में उन्हें भावी तीर्थन्कर की महिमा का प्रतीक माना गया। उनके व्यक्तित्व की सर्वांगीणता ही वैदिक परम्परा के अनुसार उनके ईश्वर के पूर्णावतार और आज भी उनके प्रति जन मानस की अपार श्रद्धा का मूल है।

'श्री कृष्ण का जीवन जितना महान् है, उतना ही उज्ज्वल है। उनके सामने जीवन एक उल्लास भरा खेल है। सर्वत्र विशुद्ध प्रेम। उनका जीवन दर्शन समझना हो तो जैन साहित्य में देखिए, महाभारत और गीता में देखिए, कितना विराट् और दिव्य रूप वहां अंकित है। विशुद्ध प्रेम और निष्काम कर्म का विचित्र सामन्जस्य जैसा भारतीय संस्कृत के इस महान जीवन में उजागर हुआ है, वह वहुत ही गौरवमय एवं प्रेरणास्पद है।'[2]

१—श्री देवेन्द्र मुनि शास्त्री : भगवान् अरिष्ठनेमि और कर्मयोगी श्रीकृष्ण : एक अनुशीलन—पृ० १७, १६२, १६६

२—श्री अमर मुनि : जीवन दर्शन—पृ० २८१

इसके अतिरिक्त कुछ जैन स्थान अन्य देव-स्थानों के रूपों में आज भी पूजे जाते हैं। पी० वी० देसाई के अनुसार त्रावन-कोर प्रदेश के सिरुचारट्टुमैल नामक स्थान में भगवती का मंदिर है. उसमें महावीर की मूर्ति भगवती के नाम से पूजी जाती है।[1]

मथुरा जिले से कुप्यालनट्टम के निकट पोयड्मले पहाड़ी पर प्राकृतिक गुफा में चट्टान काटकर बनायी गई : जैन : मूर्तियां भी अन्य देवता के नाम पर पूजी जाती हैं।

दौलवाण्डी पुरम् में पद्मावती की मूर्ति कालियममा के रूप में पूजी जाती है।

केशरिया जी, श्री ऋषभदेव: उदयपुर, मेवाड़ से करीब ४० मील दूर है, यहां इतनी केशर चढ़ाई जाती है कि सारी मूर्ति केशर से ढक जाती है, यहां भगवान ऋषभदेव जी की प्रतिमा के सामने दुर्गा पूजा तथा श्री मद्भागवत की कथा की पूजा और आरती होती है।

इसी प्रकार कोयम्बटूर जिले में अन्नेमैल पहाड़ी की उपत्य-का में त्रिमूर्ति या टिनिटी का मन्दिर है। यह टिनिटी एक पाषाण पर अंकित जिन प्रतिमा है, जिसके दोनों ओर यक्ष दो हैं, जिसे हिंदू जनता बड़े प्रेम से पूजती है।

कनकगिरी पहाड़ी पर आदिनाथ तीर्थंकर का विशाल जिनालय है जो आज भी पूजा जाता है। इसमें जैन तीर्थंकरों तथा अन्य देवताओं की मूर्तियां हैं। उनमें एक मूर्ति ज्वालामा-लिनी की है, जिसके आठ हाथ हैं। अनेक दृष्टियों से इसकी

---

१ : जैन साहित्य का इतिहास : पृष्ठ—८१

आकृति हिन्दुओं की : वैष्णवों : महाकाली से मिलती है।[1]

बाकुड़ा जिले में वर्दमान और आसनसौल के बीच प्राचीन जैन स्तूपों के छत्र पर निर्मित ईंटों के बने एक सुन्दर प्राचीन मन्दिर, जिसमें शिव के साथ तीर्थंकर पार्श्व की प्राचीन मूर्ति आज भी विद्यमान है। छोटा नागपुर में दुलभी, देवली, सुइया, पकबीरा, आदि स्थानों में और उनके आस पास भी अनेक प्राचीन जैन मन्दिर, तीर्थंकर प्रतिमायें, यक्ष-यक्षणियों की मूर्तियां आदि अनेक जैन अवशेष मिले हैं।[2]

सामन्त निम्नदेव द्वारा कोल्हापुर में सुप्रसिद्ध महालक्ष्मी मन्दिर के निकट ही अत्यन्त सुन्दर एवं कलापूर्ण नेमि जिनालय बनवाया था। इस मन्दिर शिखर की कणिका पर तीर्थंकरों की ७२ खड्गासन मूर्तियां अंकित हैं। वर्तमान में यह मन्दिर वैष्णवों के हाथ में है और नेमिनाथ की मूर्ति के स्थान पर विष्णु की मूर्ति स्थापित कर दी गई है।[3]

---

१ : दक्षिण भारत में जैन धर्म : पृ०—४७

२ : डा० ज्योति प्रसाद जैन : भारतीव इतिहास एक दृष्टि : पृष्ठ : २१

३ : जैन शासन : पृ०-३२८

जैनों में गणेश पूजन

हिन्दुस्तान को अपनी ॰ भूमि मानने वाला हिन्दू भले ही किसी भी जाति व धर्म का अनुयायी हो, अपनी पृथक-पृथक मान्यताओं के उपरान्त भी किसी न किसी रूप में गणेश पूजन किया करता है। गणानाम् अथवा (गणस्य) अर्थात साधुगण—जन गण के ईश (नियामक या नेता) को गणेश कहते हैं। गणेश शब्दगत प्रथम अक्षर ग ज्ञानार्थवाचक है, द्वितीय अक्षर 'ण' निर्माणवाचक है तथा अंतिम शब्द 'ईश' स्वाभिमानवाचक है। इस प्रकार गणेश संपूर्ण शब्द का अर्थ हुआ—ज्ञान तथा निर्वाण का स्वामी ब्रह्म, परमात्मा, परमेश्वर, या परम्तत्व आदि ।

जैन धर्म में ज्ञान का संकलन करने वाले 'गणेश' अर्थात गणधर की मान्यता है। केवल ज्ञान (सर्वज्ञता) को उपलब्ध कर ने पर अरहन्त (तीर्थंकरों) का उद्देश्य प्राय: गणधर के निमित्त से ही होता है। गणधर ही उसका मुख्य पात्र है और वे ही उस ज्ञान का बारह अंगों और चौदह पूर्वा में संकलन करते हैं। वे मति: श्रुत, अवधि (परोक्ष बातों का सीमा सहित प्रत्यक्ष ज्ञान) और दूसरों की बातों को प्रत्यक्ष जानने वाला मन—पर्यय —ज्ञान इन चार प्रकार के ज्ञान वाले होते हैं। तीर्थंकर तो किसी को शिष्य बनाते नहीं, किसी को दीक्षा देते नहीं। तीर्थंकरों के साथ जो साधुओं के संग रहता है, उसके नियामक गणधर होते हैं, क्योंकि तीर्थंकर अनादिकाल से होते आये हैं,

और अनन्तकाल तक होते रहेंगे। इसलिए गणधर भी अनादि है और अनन्तकाल तक होते रहेंगे।[1]

पं० कैलाशचन्द जी शास्त्री की सूचना के अनुसार डा० संम्पूर्णा नन्द की पुस्तक 'गणेश' के नवें अध्याय में यह उल्लेख किया गया है कि जैन धर्म में जिनेन्द्र भगवान को ही 'गणेश' और 'विनायक' कहते हैं। इसके अतिरिक्त उस नाम के किसी पृथक देव का नाम नहीं मिलता। विवाह के समय विनायक यन्त्र की पूजा की जाती है। उस अवसर पर जो श्लोक पढ़े जाते हैं, उनमें से दो श्लोक नीचे दिए जा रहे हैं –

गणानां मुनीनामधीशस्त्वतस्ते गणेशाख्यया ये भवन्तं स्तुवन्ति।
सदा विघ्नसंदोहशान्तिर्जनानां करे संलुठत्यावतत्रेवसानाम्॥

यतस्त्वमेवासि विनायको मे दृष्टेष्टयोगानवरुद्धभावः।
त्वन्नामात्रेणपराभवन्ति विघ्नारयस्तर्हि किमत्र चित्रम्॥[2]

श्वेताम्बर-सम्प्रदाय में गणेश जी के समान ही राजमुख वाले पार्श्वयक्ष की कई प्रतिमाएं जैन-मन्दिरों में प्रतिष्ठित हैं। इससे कई वार लोगों को भ्रम भी हो जाता है कि गणेशजी की मूर्ति जैन मन्दिरों में कैसे ? पर वास्तव में २३वें तीर्थंकर पार्श्वनाथ का अधिष्ठायक शासनदेव श्वेताम्बर–ग्रन्थानुसार वे पार्श्वयक्ष ही हैं।

यद्यपि श्वेताम्बर विद्वान् और कवियों ने अपनी रचनाओं के मंगलाचरण में प्रायः तीर्थंकरों, गौतमगणधर एवं विशेषतः सरस्वती आदि का ही स्मरण किया है पर कई कवि ऐसे भी

१–कल्याण–गणेश अंक–पृष्ठ ३७४–जैन मत में गणेश का स्वरूप–तारा चन्द पांड्या

२–कल्याण–गणेश अंक–पृष्ठ ३७२-लेखक भंवर लाल जी नाटा

हुए हैं, जिन्होंने विघ्नविनाशक गणेशजी की लोक-प्रसिद्धि के कारण अपनी रचनाओं के मंगलाचरण में श्री गणेशजी को नमस्कार और उनका स्मरण किया है। ऐसे कुछ कवियों के मंगलाचरण के श्री गणेश सम्बन्धी पद्य नीचे सद्धृत किये जा रहे हैं जिससे श्वेताम्बर कवियों की उदार भावना और समन्वयवृत्ति का परिचय मिल जाता है।

१-सं० १५६५ में उदयभानुरचित 'विक्रमसेन रास' के प्रारम्भ में...

शंभु शक्ति मनिधरी, करिस कवि नव नवइ छंहि ।
सिद्धि बुद्धिवर विघनहर, गुण निधान गणपति प्रसादि ॥

२-सं० १५७५ में अमृतकलशरचित 'हमीरे प्रबन्ध' के प्रारम्भ में...

गवरीपुत्र गजवदन विशाल, सिद्धि बुद्धिवर वचन रसाल ।
सुर-नर-किंनर सारइं सेव, धुरि प्रणमूं लम्बोदर देव ॥

३-सं० १६६५ कवि हेमरत्नरचित 'गौरा बादल चौपाई' के प्रारम्भ में...

सकल सुखदायक सदा सिद्धि बुद्धि सहित गणेश ।
विघन विडारणरिध करण, पहिली तुझ प्रणमेश ॥

४-सं १७७२ में दन पति विजयरचित 'सुन्माण रासो' के प्रथम में...

शिव सुत सुंडालो सजल, सेवे सकल सुरेश ।
विघन विडारण वरदीयण, गवरी-पुत्र गणेश ॥

५-सं० १७७६ में केशर कविरचित 'चंदनमलियागिरी' चौ०, के

प्रारम्भ में···

विघन विडारण सुख करन आनन्द अंग उल्लास ।
गवरी–सुत पूणमु धवर प्र यक्षा पूरो आस ॥

६– सं० १६०५ पं० मतिसारके 'कपूर मञ्जरी रास' के प्रारम्भ में····

प्रथम गणपति वर्णवऊं गवरी पुत्र उदार ।
लक्ष लाभ जै पूरवह, देव सविहुँ प्रतिमार ॥

सेवंभेजस मुगट भर, सींदूर सोहि सिरीरि ।
सिद्ध वुद्धि नउ भरतार, जे वुद्धि दातार वड वीर ॥

७–सं० १६३० में महेश्वरसूरि–शिष्यरचित 'चंपक सेनरास' के प्रारम्भ में···

गणपति गुन निधि विनऊं, सरस्वति करोपसाद ।

८–सं० १७३६ में कवि लालचन्द रचित 'लीलावती' (गणत) भाषा में वीकानेर में रचित···

गणपति देव मनाइ कै, सुमरि देवि सरसति ।
भाषा लीलावती करूं चतुर सुनो इक चित्त ॥
सोभित सन्दूर पूर, गज सीस नीके नूर,
एकदंत सुन्दर विराजै भालचन्द जू ।
सुर कोरि कर जोरि, अभिमान दूर छोरि ।
प्रणमत जाके पद पंकज अमंन जू ॥
गौरीपूत सेवे जेउ सोउ मन चित्यो पावे,
ऋद्धि वृद्धि सिद्धि बुद्धि होत आनन्द जू ।
विघन निवारे संत लोककूं सुधारे जैसे,
गणपति देव जय जय सुखकंद जू ॥

९–सं० १७२० में कवि रमचन्द्र रचित 'राम विनोद' के प्रारम्भ में...

सिद्धि बुद्धिदायक सलहीये, गवरी-पुत्र गणेश ।
विघन विडारण सुख करण, हरशधरी प्रणमेश ॥

१०–सं० १७२५ के लगभग लक्ष्मी वल्लभरचित 'कालज्ञान के प्रारम्भ में...

सकति शंघु–सुतन, धर तीनों का ध्यान।
सुन्दर भाषा वंध करि, करिहुँ कालज्ञान ॥

११–सं० १७६४ में समरथ कवि० वि० 'रसमज्जरी' भाषा के प्रारम्भ में सवैया...

गणेश को रूप अनूप विराजति गंडौ–स्थल मद वारि भरै ।
ते पान किये अति मत्त भए भर गुंजित भौंर अनेक फिरै ॥
ते गुंजत ही मुख की छवि देखि, मनों मनि नील की संक हरै ।
सो देव विनायक सदा सुखदायक, तुमको नित ही सौख्य करै ॥

इस प्रकार १६वीं से १८वीं शताब्दि के श्वेताम्वर कवियों के हिन्दी और राजस्थानी दोनों भाषाओं के ग्रन्थों के प्रारंभ में गणेश जी का स्मरण किया जाता है ।

इनमें से कई ग्रन्थ तो वैद्यकएवं गणित के हैं। वैद्य-कादि ग्रन्थ तो सार्वजनिक है ही, अन्य कई संस्कृत एवं चरित्र काव्य भी हैं, जिनकी कथायें ऐतिहासिक एवं सार्वजनोपयोगी हैं। श्री गणेश जी के भक्त भी इन रचनाओं से लाभ उठा सकें– इस विशाल दृष्टि से गणेश जी की अति प्रसिद्धि के कारण ही जैन विद्वानों ने इनका स्मरण ग्रन्थ के प्रारम्भ में किया है ।[1]

१–कल्याण–गणेश अंक–पृ० ३७२–श्री भंवर लाल जी नाहटा

'वैसे भी गणेश जी को आद्य देव कहा गया है। जैनियों में विनायक जी के नाम से मंगल कार्य में सबसे पहले गणेश जी की ही पूजा होती है। ये रिद्धि सिद्ध के दाता माने जाते हैं।

जैन व वैष्णवों की प्राचीन इमारतों के मुख्य द्वार पर दहरी के ऊपर गणेश जी की मूर्ति अंकित रहती है। कमरों के अन्दर तथा दरवाजों, दीवारों पर भी गणेश जी के रंगीन चित्र भी बने हुए आज भी देखे जा सकते हैं।

"ये मंगलकामी देवता केवल हिन्दुओं के ही उपास्यन रहे, वरन् बौद्धों और जैनों के भी पूज्य हुए"।[१]

श्वेताम्बर जैनों में विवाह के अवसर पर तो एक छोटे बालक को जो वर का छोटा भाई, भतीजा, भानजा रिश्ते में लगता हो उसे वर के साथ रहने वाला 'विनायक' बनाने की प्रथा भी चली आ रही है। ऐसे बच्चे को वर के माफिक ही कंकन बांधा जाता है। माथे पर चमकता केशर चन्दन से तिलक लगा, अच्छे वस्त्र पहना अलग से अथवा वर के साथ ही घोड़े पर बैठाया जाता है।

इस प्रकार सैद्धान्तिक एवं व्यवहारिक पक्षों में जैन मतावलम्बियों के बीच गणेश जी की मान्यता निर्विवाद है। वैष्णव धर्म के अन्तर्गत जो परिकल्पना गणेशजी की की गई है जैन धर्म में भी बहुत कुछ उसकी आधार भूमि समान दिखाई पड़ती है। अन्तत: यह कहना अप्रसांगिक न होगा कि आदि और मंगल कार्यों के प्रतीक गणेश जी दोनों ही धर्मों में हिन्दू संस्कृति का समान रूप से प्रतिनिधित्व करते हैं।

१—नवनीत-गणपति गाथा—पृ० ५०—श्री जैनेन्द्र वात्स्यान

जैन साहित्य में सती सीता

जीवन तो सभी जीवों का होता है परन्तु उनसे, जिनमें लोकहित की विशेषतायें होती हैं उन्हीं का महापुरुष अवलोकन करते हैं तथा उन्हें विश्व के समक्ष प्रस्तुत करते हैं। जैनाचार्य महासैनसूरि ने 'सिया-चरिउ' नामक ग्रन्थ में ऐसी ही एक महासती सीता के जीवन चरित्र पर लिखा।

देश में असंख्यात सतियां हुयीं, पर महासती सीता की अलग ही बात है। उनका एक अपना स्वतन्त्र चिन्तन है। आज भी यदि देश में सतियाँ हैं तो वे ऐसी ही महासतियों की कृपा से हैं। श्रीराम के कहने पर सीता जी ने अग्निपरीक्षा देकर भारत का ही नहीं, विश्व के स्त्री समाज का सिर ऊंचा किया।

महासैन सूरि ने लिखा है कि सीता जी कहती हैं कि सम्यक्त्व से ही स्त्री पर्याय को छेदा जा सकता है और मुक्ति को प्राप्त किया जा सकता है। अहिंसा, सत्य, अशौर्य, अपरिगृह और ब्रह्मचर्य को पाल कर ही हम अपनी आत्मा को परमात्मा बना सकते हैं।[१]

आचार्य तुलसी ने भी अपने खण्ड काव्य अग्नि-परीक्षा की प्राथमिकी में लिखा है कि जैन परम्परा में राम और सीता का वही महत्वपूर्ण स्थान है जो अन्य धार्मिक परम्पराओं में है। जैन कवियों ने विभिन्न युगों में, विभिन्न भाषाओं में विरिचित काव्यों

१–विद्यानन्द मुनि : मंगल प्रवचन–पृष्ठ २२६

के माध्यम से राम और सीता की वन्दना की है। उन्हें भारतीय संस्कृति के उन्नायक और प्रेरक व्यक्तित्व के रूप में चित्रित किया है। राम आदर्श राजा हैं और सीता आदर्श नारी !

इसी पुस्तक में आचार्य तुलसी ने सती सीता के प्रति अपने मनोभावों को इस प्रकार प्रस्तुत किया (पृष्ठ १६६)।

ओम जय सीता माता,

तेरे बिना न कोई जगदम्बे। त्राता।

ॐ जय सीता माता।

इस सम्बन्ध में सातवें सर्ग में आचार्य तुलसी ने सीता को जगदम्बा मां, महासती, कुलकमला, अचला, सन्नारी आदि सम्बोधनों से अभिहित किया है।

हमारा देश प्राचीन काल से ही धर्म प्रधान देश रहा है। यहां भक्ति की धारायें सदा प्रवाहित रही हैं। इन धाराओं के साथ जिन महान विभूतियों के नाम अटूट रूप से जुड़े हुए हैं, उनमें मर्यादा पुरुषोत्तम राम और महासती सीता के नाम अग्रणी हैं। भारतीय साहित्य और लोक जीवन मे उनके अप्रतिम स्थान हैं। राम और सीता किसी एक परम्परा से प्रतीक नहीं है, अपितु उनकी सार्वभौम व्याकपता निर्विवाद है, इसलिए महर्षि वाल्मीकि ने श्री विमल सूरि, महाकवि स्वयम्भू, कविवर रविषेण, आचार्य जिनसेन, आचार्य हेमचन्द्र, महाकवि पन्नि, गोस्वामी तुलसीदास आदि अनेक विद्वानों ने अपने-अपने प्रकार से राम और सीता की गाथायें लिखी हैं।[१]

आचार्य तुलसी ने सीता जी को 'महासती' के रूप में प्रस्तुत किया है और उनके शील तथा पवित्र चरित्र को आदर्श मान

१—यशपाल जैन :अग्नि परीक्षा और विवाद—पृष्ठ १

कर चलने की सलाह दी है।[1]

'वे (आचार्य तुलसी) सीता को नारी-रत्न अमूल्य, शारदा-तुल्य सयानी गृहलक्ष्मी, माधुर्य मूर्तिसी, सद्गुण-गौरव–गीता के रूप में महासती ही चित्रित करते हैं।[2] तथा इसी रूप में शील और पवित्र जीवन विताने की शिक्षा देते हैं।

'जिसमें सीता का शौर्य भरा जीवन देता संदेश नया।
आदेश नया उपदेश नया नारि–जागृति उन्मेष नया॥
महिला के, माता के मिलते, इसमें सीता के युगल रूप।
अपने ही सत्य, शील, वल से निखरा जग में उसका स्वरूप।[3]

अन्ततः यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि आज जैन सम्प्रदाय राम तथा सीता के प्रति उतनी ही श्रद्धा एवं सम्मान रखता है जितना अन्य सम्प्रदाय।

१–अटल विहारी वाजपेयी : पृष्ठ १५
२–रत्नसिंह शाण्डिल्य : अग्नि परीक्षा : चिन्तन का आव्हान–पृष्ठ २
३–आचार्य तुलसी : अग्नि परीक्षा–पृष्ठ

जैन धर्म में श्री हनुमान

भारतीय दर्शन शास्त्रों में विविध संस्कृतियों के अन्तर्गत अनेक कथायें आचार्यों ने विभिन्न भाषाओं में लिखीं, उनमें श्रमण संस्कृति के आचार्यों का कथन काफी कुछ वैज्ञानिक है।

'गुण भद्राचार्य' उत्तरपुराण में कहते हैं कि शक्ति और विधि के अनुकूल मोक्ष मार्ग पर चल कर ही राम व हनुमान दोनों श्रुतकेवली हुए और तपस्या करके मांगीतुंगी पर्वत से मुक्त हुए। श्री हनुमान साक्षात् कामदेव थे तथा कर्तव्यनिष्ठ थे। वे श्री राम के अनन्य भक्त थे। जहां वे मुक्त हुए, उन सिद्ध क्षेत्रों की वन्दना करके हम अपना जीवन भी सफल बना सकते हैं।[1]

जैन ग्रन्थों तथा विद्वानों द्वारा लिखी गई अनेक पुस्तकों में श्री हनुमान का स्वरूप उनकी विशिष्ट मर्यादा तथा उनके प्रति व्यक्त किये गये सम्मानभाव बहुत कुछ हिन्दु धर्म ग्रन्थों के अनुरुप एवं समान ही हैं।

कविवर श्रीमान् सूर्यमुनि जी महाराज द्वारा रचित जैन रामायण के अन्तर्गत भी हनुमान को सुख सम्पत्ति के दाता, राम के भक्त, महाबली योद्धा और अंजली तथा पवन के पुत्र के रूप में वर्णित किया गया है।

'योद्धा वीरबली हनुमान, राम के भक्त कहाते हैं
भक्त कहाते हैं, अंजली पुत्र कहाते हैं।'[2]

१—मुनि विद्यानन्द : मंगल प्रवचन, पृष्ठ : २३०

२—जैन रामायण : कविवर्यसूर्यमुनि जी महाराज : पृष्ठ२३

इसी पुस्तक में कविवर ने हनुमान की वन्दना करते हुए सिद्धियों और नवनिधियों के दाता के रूप में उस महावली हनुमान के गुण का गान किया है। ऐसे हनुमान जिन्होंने राम के भक्त के रूप में सीता की सुधि ली, राम के कार्य को पूर्ण किया, ऐसे अजर और विकार से रहित हनुमान के गुण का प्रतिदिन गान करने से बुद्धि निर्मल हो जाती है। हनुमान का यह दर्शन में अपना विशिष्ट स्थान है और वस्तुतः राम के समान राजा और हनुमान जैसा भक्त न तो अब तक भूतल पर हुए और न होंगे।

सुगुरू नन्द नवनिधि के दायक, प्रणभू वार हजार।
गुण गाता मैं वीर बली का, परमा पूरण:हार॥

काज सुधारे भक्त राम के, ली सीता की सुध।
करे गान गुण प्रतिदिन उनकी, निर्मल होवे बुद्ध॥

सिद्ध नाम प्रख्यात हनु का, षट दर्शन में मान।
हुए न होंगे राम भूम से, सेवक हनुमान॥[1]

इस प्रकार निष्कर्षतः यह स्पष्ट है कि हिन्दू ग्रन्थों में वर्णित हनुमान के चरित्र और जैन ग्रन्थों में उल्लिखित हनुमान मूलतः धर्म और संस्कृति के समन्यात्मक धरातल पर समान है। दोनों ही ग्रन्थों में हनुमान की वही मर्यादा और विशिष्ट गुणों, कर्त्तव्य-निष्ठा, भक्ति, ब्रह्मचर्य और शक्ति आदि का प्रतीक माना गया है जो इस बात की पुष्टि करता है कि जैन और हिन्दू धार्मिक मान्यताओं के कई धरातल पर अभिन्न हैं।

१—जैन रामायण : श्रीमान् कविवर्य सूर्यमुनि जी महाराज:पृ० २३

स्वास्तिक व ओम

स्वास्तिक धार्मिक सिद्धान्तों का प्रतीक है, इसका उद्‌भव भारतीय संस्कृति के साथ ही हुआ था। स्वास्तिक कुशलता और कल्याण का सूचक है, मंगलकारी है। इसी प्रकार ॐ भी धार्मिक विशेषताओं का सूचक है। अंकित करने की कला भले ही भिन्न हो।

स्वास्तिक व ओम चिन्ह वैष्णवों ने तो माना ही है, जैनियों ने भी अपने धार्मिक कार्यों में स्वस्तिक तथा धार्मिक ग्रन्थों में ओम को जगह-जगह अपनाया है। सामायक के समय ओम का कई बार उच्चारण भी करते हैं, ओम के उच्चारण के साथ ही दोनों समाज के व्यक्ति ध्यानस्थ हो जाते हैं, शान्ति का आनन्द लेने लगते हैं।

जैन तीर्थन्कर भी स्वास्तिक चिन्ह को मान्यता देते हैं। जिससे दोनों पक्षों की सांस्कृतिक व धार्मिक एकरूपता स्पष्ट होती हैं। भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है।

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन् देहं स याति परमांगतिम्॥

अर्थात 'ओं' इस प्रकार एक अक्षर रूपी ब्रह्म का ध्यान करता हुआ जो जीव पार्थिव शरीर को छोड़ता है वह परम गति को प्राप्त होता है।

विजय पताका लेखक श्री रामचन्द्र शर्मा वीर अपनी पुस्तिका के पेज १८१ पर भी लिखते हैं कि जैन धर्म और वैदिक धर्म दो होकर भी एक ही हैं। वेद के मूल मन्त्र ॐ का जैन धर्म में वही आदर व सम्मान है, जो एक ब्राह्मण के हृदय में है।

ओंकार ऐसा चिन्तामणि है जिसके द्वारा मनुष्य सब कुछ प्राप्त कर सकता है। छान्दोग्य-उपनिषद्, माण्डूक्य-उपनिषद् कठ-उपनिषद्, श्वेताश्वतर-उपनिषद्, भगवत्गीता, मनुस्मृति आदि में अनेकानेक स्थलों में ओंकार का वर्णन है।

ओंकार के जप और अर्थ के चिन्तन से अध्यात्म-मार्ग पर चलने वाला सरलता से एकाग्रता तथा अन्र्मुखता को प्राप्त कर सकता है।

ओंकार ही आत्मचिन्तन की प्रथम सीढ़ी है। इसके द्वारा ही मनुष्यपूर्ण ब्रह्म की ओर बढ़ सकता है। ओंकार के जप से क्रमशः अध्यात्मिक उन्नति करता हुआ निश्चिय ही आनन्दमय परमपद को प्राप्त कर सकता है।

कल्याण दिसम्बर १९५३ अंक १२ पृष्ठ १४६३ पर ओंकार माहात्नय' लेखक डा० मंगलदेव जी शास्त्री अपने लेख में लिखते हैं कि कहने की आवश्यकता नहीं कि वैदिक मार्ग की तरह जैन-बौद्ध आदि सम्प्रदाय भी ओंकार के माहात्म्य को मानते हैं।

जैन से वैष्णव : वैष्णव से जैन

पूर्ववत: इस बात को स्पष्ट किया जा चुका है कि जैन धर्म में आस्थावश दीक्षित होने वाले बहुत से क्षत्रीय राजाओं ने इस के विकास और सम्वर्धन में जीवन भर यथाशक्ति प्रयास किया। धर्म अपने आप में मूलत: एक ऐसा विश्वास है जो आस्था, संयम, आचरण आदि की सर्वथा सहवर्तीय और अनुकूल जीवन दृष्टि प्रदान करता है। अन्तरंग नियम की व्यवस्था ऊपरी तौर पर जैन और वैष्णवों के स्वरूप तथा आकार को कुछ अंशों में भिन्न कर सकती है किन्तु हिंसा और अहिंसा के विभिन्न पक्षों में अपना आत्मिक विश्वास प्रगट करने की मानवतावादी धार्मिक पृष्ठभूमि में सिर्फ इस कारण परस्पर विरोध नहीं माना जा सकता कि उसके मतानुयायी अलग-अलग रास्तों और उससे सम्बन्धित धार्मिक पद्धतियों के आच-रण का अनुगमन करते हैं, इसी क्रम में जहां एक ओर बहुत से वैष्णवों में जैन धर्म के प्रति अपनी सम्पूर्ण आस्था प्रगट करते हुए उसकी दीक्षा ली वहीं बहुत से जैन मतानुयायी भी वैष्णव धर्म में दीक्षित हुए।

वस्तुत: दोनों ही सिद्धान्त एक दूसरे के पूरक होने के कारण भारतवर्ष में बहुत पहले से ही धर्म परिवर्तन कर लेने पर कोई विशेष अन्तर नहीं माना जाता था। अच्छे से अच्छे नियम संयम में रहकर स्वयं का उद्धार भी समय समय पर

जैन और वैष्णव के धर्म परिवर्तन का कारण रहा। और इसके पीछे निश्चित ही संस्कृति में सम्मिलित होने या उससे बिल्कुल कट जाने जैसी कोई भ्रामक स्थिति नहीं थी।

समय-समय पर जैन आचार्यों ने हजारों, लाखों अजैनों को जैन बनाया है जिसका उल्लेख जैन ग्रन्थों में मिलता है। जिस के अतिरिक्त जैन धर्म को छोड़ कर वैष्णव धर्म स्वीकार कर लेने के भी बहुत से उल्लेख जैनेतर साहित्य में उपलब्ध हैं।[1]

उदाहरणार्थ जमुना वल्लभ रचित 'रसिक भक्त माल' का एक पत्र उद्घृत किया गया है जिसके अनुसार सेठ लक्ष्मी चन्द जी जैन धर्म छोड़ कर वैष्णव हो गए थे और वृन्दावन में उन्होंने श्री रंगनाथ जी का मन्दिर बनवाया।[2]

राजस्थान के कई सन्त-सम्प्रदायों के आचार्य व अनुयायी भी पहले जैन थे फिर किसी जैनेतर संत के सम्पर्क में आने से उनके अनुयायी बन गए, इसके भी कुछ प्रमाण उनके ग्रन्थों में मिलते हैं। रामस्नेही सम्प्रदाय की रेणशाला के आचार्य हरखा राम जी को श्रावक जाति का बतलाया गया है। अतः ये नागौर के सरावगी यानि दिगम्बर जैन ही होने चाहियें 'श्री रामस्नेही अनुभव आलोक' नामक ग्रन्थ के पृष्ठ १६ में इनका परिचय देते हुए लिखा है-

आचार्य श्री हरखा राम जी महाराज का आविर्भाव वि० सं० १८०० भाद्रपद कृष्ण द्वादशी के दिन सायं काल नगर नागौर में हुआ। आप के पिता विजयराज तथा माता वहाला देवी थी। आप वश्य वंश में श्रवक जाति के थे। विजेराज जी

१४-श्री अगर चन्द जी नाहटा: संमति संदेश-पृ० ३१
२-प्रभुदयाल जी मित्तल: चैतन्यमत और वृज साहित्य-पृ० ३६४

वि० सं० १७७५ में श्री दरयाव महाराज से राम–मन्त्र ग्रहण कर परम श्रद्धालु राम स्नेही भक्त बन गए थे। इनके सबसे छोटे पुत्र हरखा राम जी थे। इसी ग्रन्थ में इस राम सनेही सम्प्रदाय की अनुयायी आभाबाई का परिचय पृष्ठ १२१ में दिया गया है। वह नागौर जिले के डावगांव के निवासी सवत सिंहओस वाल कोठारी की पुत्री थी, सन्त टेमदास जी के सम्पर्क में आकर उनकी शिष्या हो गई।

राजस्थान के कई राज्यों में कुछ राज्याश्रित जैनी वैष्णव हो गए। कुछ व्यक्तियों ने चमत्कार आदि से आकर्षित होकर जैन धर्म को छोड़ दिया। तारण समाज दिगम्बर जैन का ही अंग है। श्री तारण तरण मंडला चार्य ने इस पंथ को चलाया था इनका जीवन चरित्र उदास्यन श्रावक कालुराम जी जैन मुकाम सेमरखेड़ी द्वारा लिखा गया है। वे अपनी पुस्तिका में लिखते हैं कि श्री तारण स्वामी का जन्म विक्रम सम्वत् १५०५ में हुआ था जिन्होंने ५५=३१९ व्यक्तियों को अपना शिष्य बनाया था जिनको अध्यात्म मार्ग का मर्म बतलाया था जिसमें शिव कुमार, शाह कुमार नरेशों के अलावा भी जो स्वामी जी ने छः संघ बनाए थे उनमें समैया, गौलालारे तथा दुसके इनको तो दिगम्बर मूर्ति पूजकों में से ही सम्बोध थे बाकी तीन संघों में चरणागत यह संघ गहोई वैश्यों को संबोधित कर बनाया (आज भी हजारों घर गहोइयों के वैष्णव धर्म पालते हैं)। शेष दो संघ असहठी और अयोध्या वासियों के नाम से प्रसिद्ध हुए। इस प्रकार इन छः संघों का गठन किया था। वैष्णव सम्प्रदाय में अब भी असहठी नाम संघ तथा अयोध्या वासी, अवधिया आदि आदि जातियां विद्यमान हैं।

इसीप्रकार अवध देश में कुमारगुप्त के पुत्र स्कन्वगुप्त के काल में ही

दूसरे धर्मों के प्रति कोई भेदभाव नहीं बरता जाता था। स्कंधगुप्त के समय एक वैष्णव ने जैन प्रतिमाओं का भी निर्माण कराया था। अपभ्रंश के महाकवि पुष्पडंत जो कि काश्यम गौत्रिय ब्राह्मण थे, माता-पिता के शैवानुयार्य होने के उपरान्त भी उन्होंने जैन धर्म की दीक्षा ली और जिन सन्यास लेकर शरीर त्याग किया।[1]

मगध देश में ३२२ ई० पूर्व चन्द्रगुप्त मौर्य का राज्य था। जो मौर्यय नामक क्षत्रिय वंश में से थे। २४ वर्ष राज्य करने के वाद २९८ ई० पूर्व में चन्द्रगुप्त मौर्य का देहान्त हो गया, जिन्होंने जैन धर्म स्वीकार कर लिया था।

गुजरात में कुमार पाल सौलंकी राजपूत का राज्य था। वो जैन धर्म को मानते थे, जैन विद्वान उनके दरबार में रहते थे। कुमार पाल की मृत्यु ११७३ ई० में हुई थी, जिनकी राजधानी अन्हलवाड़े में थी।

इनके अतिरिक्त कई अन्य वैष्णव राजाओं ने भी जिन दीक्षा स्वीकार की थी।

वशाली के राजा चेटक, सिन्धु सौवीर देश का राजा-उदयन, अवन्ती नरेश-प्रद्योत, कोशम्बी का राजा-शतानीक, चम्पा का राजा-श्रेणिक, मगध सम्राट-कुणिक, (आजात शत्रु) सम्राट-सम्प्रति (अशोक का पौत्र) महाराजा-खारवेल, गुजरात का महाराजा-अमोघवर्प, चावड़ावंशी-वनराज, चालुक्योंवंशी-मूलराज, रथवीरपुर के-शिवभूति, (पृष्ठ २९३)

१-जैन, साहित्य और इतिहास-पृष्ठ २२५

सामिल प्रान्त के–पांडय नरेश, पल्लववंशी–शिवस्कन्द वर्मा महाराज पल्लवराज–महेन्द्र देव वर्मा, गंगवंशीय–मारसिंह, नासिक के राजा–राष्ट्रकूट, अमोघवर्ष प्रथम, तथा सेनापति–विमल, कुमारपाल इत्यादि, मंत्री–तेजपाल, वस्तुपाल, चामुण्डराय।

पुष्पदन्त ब्राह्मण थे, उनके माता-पिता पहले शैव थे, परन्तु पीछे किसी दिगम्बर जैन गुरू के उपदेश से जन हो गये।

भगवान् महावीर के समय मगध देश की राजधानी राजगृही में इन्द्रभूति नामक गौतम गौत्रीय वेद-वेदांग में पारंगत एक शीलवान ब्राह्मण विद्वान ने महावीर स्वामी के पादमूल में जिन-दीक्षा ले ली और उनका प्रधान गणधर बन गया।[१]

१–जैन धर्म : पृष्ठ २६३, २१

वैष्णव राजवंशों द्वारा जैन धर्म को संरक्षण

वहुत से भारतीय वैष्णव राजवंश ऐसे भी थे, जिन्होंने जैन धर्म को संरक्षण दिया।

१. तमिल देश के प्रमुख राजवंशों के अनेक राजाओं और रानियों से जैन धर्म को निरन्तर संरक्षण और सम्पोषण प्राप्त होने का उल्लेख मिलता है। जिसमें पल्लव राजवंश के महेन्द्र-राज वर्मा प्रथम का नाम विशेष रूप से लिया जाता है।

२. महान चोल राजवंश के शासकों की भी जैन समाज और जैन धर्म के प्रति गहरी आस्था के संकेत मिलते हैं। चोल शासन पद्धति में ऐसे अनेक गांवों का उल्लेख है जिनमें जैन धर्म के अनुयायी रहते थे और वे ही उनका प्रबन्ध करते थे। इसमें लाट राजवीर चोल और उनकी रानी लाटमहादेवी का नाम उल्लेखनीय है।

३. पूर्वीय चालुक्यवंश के सदस्यों से भी जैन धर्म को प्रारम्भ से ही संरक्षण मिला। इस राजवंश का शासक विजयादित्य षष्ठ उपनाम अम्म द्वितीय जैन धर्म का महान हितैषी था।[1]

४. वरंगल के काकतीय शासकों से भी जैन धर्म को सहायता

१—दक्षिण भारत में जैन धर्म—पृ० ४५, ६६

मिली थी।[1]

५. कर्नाटक सलके उत्तराधिकारियों प्रमुखतः विनयादित्य प्रथम तथा उसके वंशजों ने जैन धर्म को महान संरक्षण दिया।

६. विष्णुवर्धन के सेनापति हुल्ल जैन धर्म का अनन्य भक्त था। राजा नरसिंहदेव ने जैन धर्म के प्रति जो उदारता बरती उसमें हुल्ल का ही हाथ था।[2]

७. चामुण्डराय बड़ा उदार एवं दानी था। जैन धर्म के लिये किये गये उसके अथक प्रयासों ने उसे भारतीय इतिहास में अमर बना दिया। श्रवणबेलगोला में ५७ फिट ऊंची गोम्मटेश्वर की मूर्ति की स्थापना उसी ने की थी।

८. विजय नगर के राजाओं की जैन धर्म के प्रति उदारता के सन्दर्भ में एक प्राचीन शिलालेख पर यह अंकित मिलता है कि जो भी इस जिन धर्म का विरोध करेगा वह अपने "महामहत्" के शिष्यत्व से बहिष्कृत कर दिया जायेगा। वह शिव का द्रोही तथा विभूति, रुद्राक्ष, लिंग तथा पवित्र तीर्थ काशी और रामेश्वर की अविनय करने वाला समझा जावेगा। इस पर सब वीर शैव नेताओं ने हस्ताक्षर किये।[3]

९. चगाल्व राजाओं के इतिहास में एक उल्लेखनीय व्यक्ति सेनापति मंगरस है। मंगरस सुयोग्य सेनापति होने के साथ ही कन्नड़ भाषा का चतुर कवि और जैन धर्म का संरक्षक था।[4]

१–वही–दक्षिण भारत में जैन धर्म–पृ० ७१
२–वही– " " पृ० १०८
३–वही– " " पृ० ११५, १४८
४–वही– " पृ० १५२

'इसके अतिरिक्त महाराज विक्रम के काल में सिद्धसैन दिवाकर नामक एक प्रसिद्ध जैन आचार्य हुए। राजा इनका वहुत सम्मान करते थे। जैन और वैदिक जैसा कोई भेदभाव उस समय नहीं था। महाराज चन्द्रगुप्त ने आचार्य सिद्धसैन सूरि को वहुत धन दिया। सिद्धसैन जैन सम्प्रदाय में पहले आचार्य थे, जिनके मन में यह वात समा गई कि सारा जैन आगम संस्कृत में कर देना चाहिए।[१]

महावीर के प्रमुख शिष्यों (गणधरों) एवं समर्थक राजाओं द्वारा जैन धर्म का प्रसार ५४६ ई० पू० वहत्तर वर्ष की आयु में पावा नामक स्थान में महावीर ने अपना शरीर छोड़ा, उस समय तक उनके मत का मगध और आसपास के क्षेत्रों में काफी प्रचार हो चुका था। इस कार्य में उनके ग्यारह प्रधान शिष्यों ने प्रमुख योग दिया था जो "गणधर" कहलाते थे। इनके नाम थे इन्द्रभूति, अग्निभूति, वायुभूति, व्यक्त, सुधर्मा, मण्डिक, मार्यपुत्र, अकम्पित, अंचलभ्राता, मैतार्य और प्रमास। इनके आधीन उपासकों एवं अनुयायियों की विविध शिष्य मंडलियां संगठित थीं जो "गण" कहलाती थीं। इस प्रकार "गण" वना कर बुद्ध की भांति महावीर ने भी अपने अनुयायियों को संघ के रूप में सुगठित कर कर दिया था। इस संगठन से उसके मत के प्रचार में वड़ी सुविधा हुई। उधर उनके मत के पोषक कतिपय राजन्यों विशेषकर लिच्छविगण के शासक चैटक तथा मगधराज विविसार और उस के पुत्र अजातशत्रु ने भी इस अहिंसा के प्रसार में अनमोल सहायता दी। इन राजकुलों के अन्य राज परिवारों में विवाह संवन्ध के फलस्वरूप भी देश के दूर-दूर भागों तक जैन धर्म की पताका

१—भारतीय संस्कृति का इतिहास :भगवद्दत—पृ० १०८

के फहराने में मदद मिली। जैन धर्म लिच्छिवियों का तो राज-धर्म वन ही चुका था। तदन्तर चम्पा, सिन्ध-सौवीर, कौशाम्वी अवन्ति आदि के नरेश भी उसके प्रभाव में आ गये। इस प्रकार वैशाली और चम्पा के अतिरिक्त श्रावस्ती और अवन्ति (उज्जैन) भी इस धर्म के पीठ-स्थान वन गये। सिकन्दर के आक्रमण के समय जैन साधु ठेठ सिन्धु नदी के तट तक पाये जाते थे।[1]

१—राष्ट्रधर्म (तीर्थन्कर महावीर विशेषांक) श्री कृष्ण वल्लभ द्विवेदी—पृ० १६

जैन धर्म के चौबीस तीर्थंकर

भारतवर्ष के क्षत्रिय राजवंशों में अधिकतर जैन धर्मानुयायी ही थे। वे क्षत्रिय वीर जैन धर्म को अपनी आत्मा का कल्याणकारी धर्म समझते थे। हजारों राजा जैन थे या जो जैन धर्म में दीक्षित हुए थे। जैन धर्म के प्रवर्तक चौबीसों ही तीर्थंकर क्षत्रिय थे।

भगवान् ऋषभदेव से लेकर भगवान् महावीर तक जैन धर्म के चौबीसों तीर्थंकरों का जन्म और निर्वाण उत्तर भारत में ही हुआ है।

१. श्री ऋषभदेव ही जैन धर्म के आद्यप्रवर्तक थे और प्रथम तीर्थंकर थे। पिता नाभिराजा तथा माता का नाम मरुदेवी था। जैन धर्म का आरम्भ काल बहुत प्राचीन है, भारतवर्ष में जब आर्यों का आगमन हुआ उस समय भारत में जो द्रविड़ सभ्यता फैली हुई थी, वस्तुतः वह जैन सभ्यता ही थी। इनका वंश इक्ष्वाकुवंश के नाम से प्रसिद्ध हुआ। प्रजा को कृषि, असि, मषी, शिल्प, वाणिज्य और विद्या इन षट्कर्मों से आजीविका करना बतलाया। सामाजिक व्यवस्था को चलाने के लिए इन्होंने क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र इस प्रकार तीन वर्गों की स्थापना की। इनके बड़े पुत्र का नाम भरत था। यही भरत उस युग में भारतवर्ष के प्रथम चक्रवर्ती राजा हुए। श्री ऋषभदेव भगवान् का पुराणों में भी वर्णन मिलता है। इनका जन्म चैत्र

कृष्णा अष्टमी को और निर्वाण-मोक्ष माघ कृष्णा त्रयोदशी को हुआ।

२. श्री अजितनाथ जिनका जन्म अयोध्या नगरी में हुआ, पिता जितशत्रु राजा और माता विजयादेवी थी। जन्म माघ शुक्ला अष्टमी को और निर्वाण शुक्ला पंचमी को हुआ, इनकी निर्वाण भूमि सम्मेद शिखर है जो आजकल विहार में पारसनाथ पहाड़ के नाम से प्रसिद्ध है।

३. श्री सम्भवनाथ जी का जन्म श्रावस्ती नगरी में हुआ, पिता जितार्थ राजा, माता सेनादेवी थी। जन्म मार्ग शीर्ष शुक्ला चतुर्दशी को और निर्वाण चैत्र शुक्ला पंचमी को हुआ। निर्वाण भूमि सम्मेद शिखर है।

४. श्री अभिनन्दननाथ जिनका जन्म विनीतानगरी में हुआ पिता सम्वर राजा और माता सिद्धार्था देवी थी। जन्म माघ शुक्ला द्वितीया को और निर्वाण वैसाख शुक्ला अष्टमी को हुआ था। निर्वाण स्थल भूमि सम्मेद शिखर है।

५. श्री सुमतिनाथ जिनका जन्म कशलपुरी नगरी में हुआ। पिता मेघरथ राजा और माता सुमंगला देवी थी। जन्म वैसाख शुक्ला अष्टमी को तथा निर्वाण चैत शुक्ला नवमी को हुआ था। निर्वाण भूमि सम्मेद शिखर है।

६. श्री पद्म प्रभुजी का जन्म कौशाम्बी में हुआ, पिता श्रीधर राजा और माता सुसीमा थी। जन्म कातिक कृष्णा द्वादशी को और निर्वाण मार्गशीर्ष कृष्णा एकादशी को हुआ था। निर्वाण भूमि सम्मेद शिखर है।

७. श्री सुपार्श्वनाथ का जन्म वाराणसी (काशी) नगरी में हुआ। पिता प्रतिष्ठेन और माता पृथ्वी देवी थी, आपका जन्म ज्येष्ठ शुक्ला द्वादशी को और निर्वाण भाद्रपद कृष्णा सप्तमी को

८. श्री चन्द्रप्रभुजी का जन्म चन्द्रपुरी में हुआ। पिता राजा महासैन और माता लक्ष्मी देवी थी, जन्म पौष शुक्ला द्वादशी को और निर्वाण भाद्रपद कृष्णा सप्तमी को हुआ था। निर्वाण भूमि सम्मेद शिखर है।

९. श्री सुविधिनाथ जी (पुष्यदन्त) का जन्म काकन्दी नगरी में हुआ। पिता राजा सुग्रीव और माता रामादेवी थी। आपका जन्म मार्गशीर्ष कृष्णा पंचमी को हुआ और निर्वाण भाद्रपद शुक्ला नवमी को हुआ था, निर्वाण भूमि सम्मेद शिखर हैं।

१०. श्री शीतल नाथ जी का जन्म मकिलपुर में हुआ। पिता राजा दशरथ और माता नन्दादेवी थी। आपका जन्म माघ कृष्णा द्वादशी को और निर्वाण वैसाख कृष्णा द्वितीया को हुआ था। निर्माण भूमि सम्मेद शिखर!

११. श्री श्रयांसनाथ जी का जन्म सिंहपुरी (सारनाथ) में हुआ। पिता राजा विष्णुसैन और माता विष्णुदेवी थी। आपका जन्म फागुन कृष्णा द्वादशी को और निर्वाण श्रावण कृष्णा तृतीया को हुआ था। निर्वाण भूमि सम्मेद शिखर है।

१२. श्री वासुपूज्य जी का जन्म चम्पापुरी में हुआ। पिता राजा वासुपूज्य तथा माता जयादेवी थी। आपका जन्म फागुन कृष्णा चतुर्दशी को और निर्वाण अषाढ़ शुक्ला चतुर्दशी को हुआ था। निर्वाण भूमि चम्पापुरी है।

१३. श्री विमलनाथ जी का जन्म कपिला नगरी में हुआ। पिता राजा कर्तवर्म तथा माता श्यमादेवी थी। आपका जन्म माघ शुक्ला तृतीया और निर्वाण अषाढ़ कृष्णा सप्तमी को हुआ था। निर्वाण भूमि सम्मेद शिखर है।

१४. श्री अनन्तनाथ जी जिनका जन्म अयोध्या नगरी में हुआ। पिता राजा सिंहसैन तथा माता सुयशा देवी थी। आपका जन्म वैसाख कृष्णा तृतीया को और निर्वाण चैत्र शुक्ला पंचमी

को हुआ था। निर्वाण भूमि सम्मेद शिखर हैं।

१५. श्री धर्मनाथ का जन्म रत्नपुर में हुआ। पिता भानुराजा तथा माता सब्रता देवी थी। आपका जन्म माघ शुक्ला तृतीया को और निर्वाण ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी को हुआ था। निर्वाण सम्मेद शिखर है।

१६. श्री शान्ति नाथ जी का जन्म हस्तिनापुर में हुआ। पिता राजा विश्वसैन तथा माता अचिरा देवी थी। आपका जन्म ज्येष्ठ कृष्णा त्रियोदशी को और निर्वाण भी इसी तिथि को हुआ। निर्वाण सम्मेद शिखर पर हुआ।

१७. श्री कुन्थुनाथ जी जन्म हस्तिनापुर में हुआ। पिता सूर-राजा तथा माता श्री सूरा देवी थी। आपका जन्म वैसाख कृष्णा चतुर्दशी और निर्वाण वैसाख कृष्णा एकम को हुआ था। निर्वाण भूमि सम्मेद शिखर है।

१८. श्री अमर नाथ का जन्म हस्तिनापुर में हुआ। पिता सुदर्शन राजा और माता श्री देवी था। आपका जन्म मार्ग शीर्ष शुक्ला दशमी और निर्वाण भी इसी तिथि को हुआ था। निर्वाण भूमि सम्मेद शिखर है।

१९. श्री मल्लिनाथ का जन्म मिथिलापुरी में हुआ। पिता कुम्भ राजा तथा माता प्रभावती थी। आपका जन्म मार्ग शीर्ष शुक्ला एकादशी को और निर्वाण फागुन शुक्ला द्वादशी को हुआ था। निर्वाण भूमि सम्मेद शिखर।

२०. श्री मुनिसुव्रतनाथ का जन्म राजगृही नगरी में हुआ। पिता सुमित्र राजा तथा माता पद्मा देवी थी। आपका जन्म ज्येष्ठ कृष्णा अष्टमी और निर्वाण ज्येष्ठ कृष्णा नवमी को हुआ था। निर्वाण भूमि सम्मेद शिखर है।

२१. श्री नमिनाथ का जन्म मिथिलापुरी में हुआ। पिता विजयसैन तथा माता वप्रादेवी थी। आपका जन्म श्रावण कृष्णा

अष्टमी और निर्वाण कृष्णा दशमी को हुआ। निर्वाण भूमि सम्मेद शिखर है।

२२. श्री नेमिनाथ, ये श्री कृष्ण के चचेरे भाई थे। इनके पिता का नाम समुद्रविजय था तथा माता का शिवादेवी थी। जन्म स्थान शारीपुर था बाद में द्वारका नगरी में रहने लगे थे। आप का जन्म श्रावण शक्ल पंचमी को हुआ था। जूनागढ़ के राजा की पुत्री राजमती से इनका विवाह निश्चित हुआ, लेकिन जब बारात जूनागढ़ पहुंची, वहां एक बाड़े में बारात के आतिथ्य सत्कार के लिए बहुत से पशु बन्द किये गये थे, इनका वध किया जाने वाला था। मुकुट कंगन त्याग कर गिरनार (खेतकगिरि) जी आत्मध्यान में लीन हो केवल ज्ञान प्राप्त कर यहां से निर्वाण अषाढ़ शुक्ला अष्टमी को हुआ।

२३. श्री पार्श्वनाथ का जन्म वाराणसी (काशी) नगरी में हुआ, पिता अश्वसैन तथा माता बामादेवी थी। आपका जन्म पौष कृष्णा दशमी और निर्वाण श्रावण शुक्ला अष्टमी को हुआ। निर्वाण सम्मेद शिखर पर हुआ।

२४. महावीर स्वामी, पिता राजा सिद्धार्थ, माता त्रिशलादेवी जाति ज्ञातृवंशी क्षत्रिय, जन्म ग्राम कुण्डग्राम (कन्डलपुर) जन्म चैत्र शुक्ला त्रयोदशी ई० पू० ५९९ बाद में श्री वर्द्धमान कहलाये। भगवान महावीर बड़े ही उत्कृष्ट त्यागी पुरुष थे। निर्वाण समय कार्तिक कृष्णा अमावस्या (दिवाली) क प्रातः ई० पू० ५२७ वर्ष में पावापुरी में इन्होंने निर्वाण प्राप्त किया।

सभी जैन तीर्थन्करों ने क्षत्रियकुलों में जन्म लिया, उनमें से पांच तीर्थन्करों ने तो बाल्य अवस्था में ही जिन दीक्षा ली। शेष सभी ने पैतृक राज्य का संचालन और संवर्धन किया था इन्हीं में से तीन ने तो दिगविजय करके चक्रवर्ती पद प्राप्त किया था। इनमें से श्री धर्मनाथ, अमरनाथ और कुन्थुनाथ का जन्म

कुरुवंश में हुआ । मुनिसुव्रतनाथ का जन्म हरिवंश में हुआ । और शेष का जन्म इक्ष्वाकुवंश में हुआ । भगवान ऋषभदेव की तरह तपश्चरण किया और केवल ज्ञान को प्राप्त करके जन-जन को धर्मोपदेश करते हुए अन्त में निर्वाण को प्राप्त किया इन में से भगवान वासु पूज्य का निर्वाण चम्पापुर से हुआ और शेस तीर्थन्करों का निर्वाण सम्मेद शिखर से हुआ ।

इसी सन्दर्भ में इन तीर्थन्करों से सम्वन्धित प्रतीकों का भी उल्लेख अप्रासंगिक न होगा । भारतीय कला में वैसे भी प्रतीकों का वड़ा महत्व है । कई वातें प्रतीकों द्वारा प्रदर्शित की जाती हैं । जन धर्म के सभी तीर्थन्करों की कल्पित आकृति एवं वैठने की स्थिति एक सी है, इन्हें प्रतीकों द्वारा पहिचाना जाता है । जैसे—

(१) वृपभदेव—'वृषभ'
(२) अजितनाथ—'हाथी'
(३) संभवनाथ—'घोड़ा'
(४) अभिनन्दनस्वामी—'वन्दर'
(५) सुमतिनाथ—'चकवा'
(६) पद्मप्रभु—'कमल'
(७) जिनसुपास—'साथिया'
(८) चन्द्रप्रभु—'चन्द्र'
(९) पुप्पदन्त—'मगर'
(१०) शीतलनाथ—'कल्पवृक्ष'
(११) श्रयासपद—'गेंड़ा'
(१२) वासुपूज्य—'भैंसा'
(१३) विमलनाथ—'शूकर'
(१४) अनन्तनाथ—'सेही'
(१५) धर्मनाथ—'वज्र'
(१६) शान्तिनाथ—'हिरन'
(१७) कन्थुनाथ—'हिरन'
(१८) अमरनाथ—'मीन'
(१९) मल्लिनाथ—'कलश'
(२०) सव्रत—'कछुआ'
(२१) नमि—'लालकमल'
(२२) नेमिनाथ—'शंख
(२३) पार्श्वनाथ—'सर्प'
(२४) महावीर—'सिह'

ऊपर उल्लिखित प्रतीकों में जितने भी नाम आये हैं, उन सवकी अधिकांशतः किन्हीं अर्थों में हिन्दू संस्कृति में एक विशिप्ट महत्व है । अतः समन्यात्मक प्रतीकों की ये विशेपता यहां भी स्पप्ट करती है कि मूलतः जैन और वैदिक परम्परा में वहुत अधिक साम्य है ।

जैनेतर साहित्य में जैन तीर्थंकर

साहित्य का क्षेत्र सदैव व्यापक उदात्त और शाश्वत माना गया है। जैनेतर साहित्य में श्रीभद्भागवत का नाम उल्लेखनीय है। इसके पांचवे स्कन्ध के अध्याय २–६ में ऋषभदेव का सुन्दर वर्णन है, जो जैन साहित्य के वर्णन से कुछ अंशों में मिलता-जुलता हुआ भी है। उसमें लिखा है कि जब ब्रह्मा ने देखा कि मनुष्य संख्या नहीं बढ़ी तो उसने स्वयंभू मनु और सत्यरूपा को उत्पन्न किया। उनके प्रियव्रत नाम का लड़का हुआ। प्रियव्रत का पुत्र अग्नीध्र हुआ। अग्नीध्र के घर नाभि ने जन्म लिया, नाभि ने मरुदेवी से विवाह किया और उनसे ऋषभदेव उत्पन्न हुए। ऋषभदेव ने इन्द्र के द्वारा दी गई जयन्ती नाम की भार्या से सौ पुत्र उत्पन्न किये और बड़े पुत्र भरत का राज्याभिषेक करके सन्यास ले लिया। ऋषभदेव ने ही जैन धर्म का उपदेष दिया था। जैन परम्परा श्री ऋषभदेव को अपना प्रथम तीर्थंकर मानती है। और वैष्णव परम्परा श्री ऋषभदेव को आठवें अवतार के रूप में स्वीकार करती है। जिससे इस बात की पुष्टि होती है कि अति प्राचीन काल से ऋषभदेव को ही जैन धर्म के संस्थापक के रूप में माना जाता है।[1]

---

१. सिद्धांताचार्य श्री कैलाशचन्द शास्त्री जैन धर्म–पृ० ४–६

इत्थं प्रभव ऋषभवतारोहि शिवस्य मे ।
सतां गतिदीन वन्धुनं वामः कथितस्तवः ॥

शिवपुराण ४।४८

अजितनाथ और अरिष्ठ नेमी नाम के तीर्थंकरों का निर्देश यजुर्वेद में मिलता है। ऋग्वेद में 'अरिष्ठनेमि' शब्द चार बार प्रयुक्त हुआ। 'स्वास्ति नस्ताक्ष्यों अरिष्ठनेमिः' यहां पर अरिष्ठ-नेमि शब्द भगवान अनिरष्ठनेमि के लिए आया है।

अथर्ववेद के व्रात्य–काण्ड में रूपक की भापा में भगवान ऋपभ का ही जीवन उर्दंकित किया गया है भगवान ऋषभ के प्रति वैदिक ऋपि प्रारम्भ से ही निष्ठावान रहे हैं और उन्हें वे देवाधिदेव के रूप में मानते रहे हैं।

'भगवान् परमर्पिभिः प्रसादितो नामः प्रियचिकीर्पयातदवरोवायने मरुदेव्यां धर्मान दर्शयितु कामावतार शनानां श्रमणानाम् ऋपीणाम् उर्ध्वमन्थिनां शुक्लया तन्वावतार।'

भगवत पुराण ५।३।२०–[1]

यजुर्वेद में ऋपभदेव, अजितनाथ और अरिष्ठनेमि इन तीनों तीर्थन्करों के नाम आते हैं। भागवत पुराण भी इस बात का समर्थन करता है कि ऋपभदेव जैन धर्म के संस्थापक थे।[2]

वैदिक हरिवंश पुराण में भी महर्पि वेदव्यास ने श्री कृष्ण को अरिष्ठनेमि का चचेरा भाई माना है।[3]

वर्तमान महावीर जन धर्म के मूल प्रवर्तक वैशाली के राजकुमार वर्धमान थे। वहाँ लिच्छिवि वंश के एक क्षत्रिय राजा राज्य करते थे। वर्धमान का जन्म ईसा से लगभग ५४० वर्ष पूर्व हुआ था। ३० वर्ष की अवस्था में उन्होंने अपना घर बार छोड़ कर १२ वर्ष तक घोर तपस्या की। १३वें वर्ष में उन्हें

१–देवेन्द्र मुनि शास्त्री, साहित्य और संस्कृति–पृ० २०६
२–राधाकृष्णन–भारतीय दर्शन का इतिहास सजिल्द १४८–२८७
३–देवेन्द्र मुनि शास्त्री : ऋपभदेवः एक परिशीलन–पृष्ठ ६

ज्ञान की प्राप्ति हुई, तब से वे 'महावीर' और 'जिन' (विजयी) कहलाये। उनके नाम से जैन सम्प्रदाय चला। 'भागवत' में ऋषभदेव की कथा आई है, जिसमें यह बतलाया गया है कि उनके जटिल अवधूत वेष से मोहित होकर अर्हत अर्थात जैन सम्प्रदाय चला। जैनों के यहां महावीर के पूर्व २४ तीर्थन्कर माने गये हैं। जिनमें एक ऋषभदेव भी थे। इस तरह उस कथा के साथ इसकी संगति बैठ जाती है। ३० वर्ष तक अपने सिद्धान्तों का प्रचार करने के बाद राजगृह के निकट ७२ वर्ष की अवस्था में महावीर स्वामी ने ईसा के ४६८ वर्ष पूर्व शरीर त्याग दिया।[1]

इसके अतिरिक्त अन्य भी बहुत से प्राचीन प्रमाण इस समर्थन में उपलब्ध है कि जैन तीर्थन्कर वस्तुतः वैदिक संस्कृति के ही अभिन्न अंग थे। अमर मुनि के अनुसार भी भगवान् ऋषभदेव तीर्थन्कर का जन्म युगलियों के युग में हुआ था। जब मनुष्य वृक्षों के नीचे रहते थे और वन-फल तथा कन्दमूल खाकर जीवनयापन करते थे। उनके पिता का नाम नाभिराजा और माता का नाम मरुदेवी था। उन्होंने युवा अवस्था में आर्य सभ्यता की नींव डाली। पुरुषों को बहत्तर और स्त्रियों को चौंसठ कलायें सिखायीं। वे विवाहित हुये। बाद में राज्य त्याग कर दीक्षा ग्रहण की और कैवल्य प्राप्त किया। भगवान् ऋषभदेव का जन्म चैत्र कृष्णा अष्टमी को और निर्वाण-मोक्ष माघ कृष्णा त्रयोदशी को हुआ। उनकी निर्वाण भूमि अष्टापद [कैलाश] पर्वत है। ऋग्वेद, विष्णुपुराण, अग्निपुराण, भगवत आदि वैदिक साहित्य में भी उनका गुण-कीर्तन किया गया है।[2-3]

१-देवेन्द्र मुनि शास्त्री : भगवान् अरिष्टनेमि और कर्मयोगी श्री कृष्ण-पृ० ६

२-गंगाशंकर मिश्र : भारत का इतिहास-पृ० ५४

३-चिन्तन की मनोभूमि-पृ० ३३-३४, अमर मुनि

इसके अतिरिक्त प्राचीन उपदेशों और ग्रन्थों के आधार पर जैसे श्रीमद्भागवत के अन्तर्गत भगवान ऋषभदेव द्वारा दिये गये उपदेश भी कम महत्वपूर्ण नहीं हैं।

नायं देहोदेह भाजां नृलोके
कष्टान् कामानर्हते विड् भुजां ये।
तपो दिव्यं पुत्रकायेन सत्वं
शुद्धयेयस्माद् ब्रह्म सौख्यंत्वनन्तम्॥
महत्सेवां द्वारमाहुर्विमुक्तै-
स्तमोद्वारयौषितां सङ्गि सङ्गम्।
महान्तस्ते समचित्ताः प्रशान्ता
विमन्यवः सुहृदः साधवी ये॥
(श्रीमद्भा० ५।५।१-२)

पुत्रो! इस मर्त्यलोक में यह मनुष्य-शरीर दुःखमय विषय-भोग प्राप्त करने के लिए ही नहीं है। ये भोग तो विष्ठा भोजी सूकर-कूकरादि को भी मिलते ही हैं। इस शरीर से दिव्य तप ही करना चाहिए, जिससे अन्तःकरण शुद्ध हो, क्योंकि इसी से अनन्त ब्रह्मानन्द की प्राप्ति होती है। शास्त्रों में महापुरुषों की सेवा को मुक्ति का और स्त्रीसंगी कामियों के संग को नर्क का द्वार बताया है। महापुरुष वे ही हैं जो समानचित्त, परमशान्त, क्रोवहीन सब के हितचिन्तक और सदाचार सम्पन्न हों।

गुरुर्नसस्यात् स्वजनो न सस्यात्
पिता न सस्याज्जननी न सास्यात्।
देवं न तत् स्यान्न पतिश्च सस्या-
न्न मोच येयः समर्पतमृत्युम्॥
(श्रीमद्भा० ५।५।१८)

जो अपने प्रिय सम्बन्धी को भगवद्भक्ति का उपदेश देकर मृत्यु की फांसी से नहीं छुड़ा देता, वह गुरू नहीं है, स्वजन स्वजन

नहीं है, पिता पिता नहीं है, माता माता नहीं है, इष्टदेव इष्टदेव नहीं है और पति पति नहीं है।[1]

भगवान महावीर के जीवन के विषय में तथा उनके द्वारा वतलाया गया धर्म-सूत्र, श्री अगरचन्द नाहटा लिखित 'कल्याण' के संतवाणी अंक में प्रकाशित हुआ है देखिये पृ० १७६। जैन तीर्थंकरों की वाणी व उनके उपदेश वैदिक धर्म ग्रन्थों में एक नहीं अनेक स्थानों पर पाये ही जाते हैं, इसके वाद भी जैन सन्तों के विषय में व उनके संयममय जीवन व उच्च कोटि के उपदेशों को स्वीकार कर उन्हें सन्तों की श्रृंखला में प्रकाशित किया है वो हैं— श्रीकुंदकुंशादार्य, मुनि रामसिंह, मुनि देवसैन, सन्त आनन्दघन जी, मस्तयोगी, ज्ञानसागर जैन योगी चिदानन्द, श्री जिनदास, आचार्य श्री भिक्षु स्वामी जी (भीखण जी) स्वामी जी श्री तारण तरण मण्डलाचार्य।[2]

जैन मत वहुत पुराना है। अनुश्रुति के अनुसार इस मत के आदि प्रवर्तक ऋषभदेव थे, जिनका उल्लेख ऋग्वेद, यजुर्वेद, विष्णु, पुराण, श्रीमद्‌भागवत् आदि जैनेतर ग्रन्थों में भी मिलता है। यह महापुरुष आदिनाथ के नाम से पुकारे जाते हैं। कहते हैं इन्होंने राजपाट त्याग कर घोर तप किया था और केवल्य-प्राप्त करके अहिंसा धर्म के सिद्धान्तों का प्रवर्तन किया था। पुराणों में वह महायोगी कह कर पुकारे गए हैं और उन्हें विष्णु का अवतार माना गया है।

ऋषभदेव से महावीर तक जैन धर्म की चौवीस महान विभूतियां हुई हैं। जिन्हें तीर्थंकर कहा जाता है।[3]

१—सन्तवाणी अंक, कल्याण—पृ० ६५
२—कल्याण (सन्तवाणी अंक) पृ० (१८३—१८५)
३—राष्ट्रधर्म (तीर्थंकर महावीर विशेषांक) श्री वल्लभ द्विवेदी पृ० २६

जैन आचार्य--जो पहले वैष्णव थे

भारतीय इतिहास एवं संस्कृति के प्राचीन अध्ययन से इस बात का संकेत मिलता है कि अपनी भीतरी वासनाओं का दमन कर आनन्द की उपलब्धि प्राप्त करने वाले तथा कर्मकाण्ड के खोखले आडम्बरों के विरोध में नैतिक संघर्षों और द्वन्दों को अपने वस में कर जैन अर्थात जिन या विजयी स्वयं को मानने वाले जैन सम्प्रदाय एवं अन्य वैदिक सम्प्रदायों ने उत्पत्तिमूलक कोई मौलिक मतभेद नहीं था।

वे सभी वैष्णव ही मूलतः थे जिन्होंने जैन आचार्य का पद प्राप्त किया। इसके अतिरिक्त जैन धर्म को संरक्षण प्रदान करने वाले बहुत से वैष्णव राजवंशी एवं क्षत्रिय वीरों का उल्लेख हमें प्राचीन ग्रन्थों में मिलता है।

इस देश की कई प्रमुख जातियां जो जैन धर्म को पहले से ही मानती आ रही हैं आज भी उनमें से अधिकांशतः वैष्णव धर्म का पालन करती हैं तथा इस तरह के सामान्य भेदस्तर को मान्यता न देते हुये उनमें परस्पर विवाह सम्बन्ध भी आज स्थापित होते दिखाई पड़ते हैं।

इसी क्रम में जैन आचार्यों, प्राचीन वैष्णव राजवंशों जैन धर्म में दीक्षित होने वाले वैष्णव क्षत्रियों आदि की विवेचना से मैं इस बात को और भी स्पष्ट करना चाहूँगा कि सांस्कृतिक

एवं सामाजिक तथा अधिकांश अर्थों में धार्मिक स्तर पर मूलतः जैन और वैष्णव दोनों ही एक ही वृक्ष की शाख होने के कारण स्वरूप और आकार में भिन्न दीखने के उपरान्त भी मूलतः एक हैं और इन्हें तर्क की संकीर्ण एवं दुराग्रही नीतियों द्वारा अलग नहीं किया जा सकता।

कुछ विभूतियां ऐसी हैं जिनका भारतीय संस्कृति पर विशेष उपकार है। आज जिस किसी भी रूप में जैन-साहित्य अथवा जैन आगम परम्परा हमें प्राप्त है उसमें इन महान आत्माओं का योगदान रहा है।

१. गौतम गणधर—

इनका मूलनाम इन्द्रभूति था, गौतम इनका गोत्र था। आप मगध की राजधानी राजगृह के पास गौबर ग्राम के रहने वाले थे।

२. गणधर सुधर्मा—

ये कोललाक सन्निवेश के अग्नि वैश्यायन गोत्रीय ब्राह्मण थे। इनका जन्म विक्रम से ५५१ वर्ष पूर्व हुआ था।

३. आर्य जम्बू स्वामी—

इनके पिता का नाम श्रेष्ठि ऋषभदत्त और माता का नाम धारिणी था। राजगृह के निवासी थे। वीर निर्वाण के १६ वर्ष पूर्व इनका जन्म हुआ था।

४. आचार्य प्रभव स्वामी—

ये विन्ध्याचल पर्वत के निकटवर्ती जयपुर नगर के विन्ध्य राजा के पुत्र थे। विन्ध्य राजा कात्यायन गोत्रीय क्षत्रिय थे। वीर संवत् ७५ में १०५ वर्ष की आयु पूर्ण करके आप स्वर्गवासी

हुये ।

५. आर्य शय्यंभवाचार्य---

आप राजगृही के निवासी वत्स गोत्रीय ब्राह्मण थे । ८५ वर्ष की आयु पूर्ण कर वीर निर्वाण संवत् ९८ में आपका स्वर्गवास हुआ ।

६. आर्य यशोभद्र—

आर्य यशोभद्र तुंगियायन गोत्र के विद्वान ब्रह्मण थे । वीर संवत १४८ में आप स्वर्गवासी हुये ।

७. आर्य सम्भूति विजय—

आप जाति के माठर गोत्रीय ब्राह्मण थे । वीर संवत् १५६ में ९० वर्ष की आयु में आपका स्वर्गवास हुआ ।

८. आचार्य भद्रबाहु स्वामी—

ये प्राचीन गोत्रीय ब्राह्मण, थे प्रतिष्ठानपुर नगर में आपका जन्म हुआ था । और ७६ वर्ष की आयु में वीर संवत् १७० में आप स्वर्गवासी हुए ।

९. आचार्य स्थूलिवभद्र—

ये नौवेंवनन्द राजा के मंत्री शकडाल के पुत्र थे । आप गौतम गोत्रीय ब्राह्मण थे । आपका जन्म वीर सम्वत् ११६ में हुआ था तथा वीर संवत् २१५ में वैभारगिरि पर आपका स्वर्गवास हुआ ।

१०. आचार्य महागिरि—

आचार्य महागिरि अपने समय के बड़े ही प्रभावशाली महा-पुरुष थे । इनका जन्म वीर सम्वत् १४५ में हुआ था, वीर संवत् २४५ में १०० वर्ष की आयु पूर्ण कर दशार्णपुर (मन्दसौर, मालवा) में आपका स्वर्गवास हुआ ।

११. आचार्य सुहस्ति—

आर्य सुहस्ति भी आचार्य स्थूलिभद्र जी के शिष्य रत्न थे। इनका जन्म वीर सम्वत् १९१ में हुआ था और २९१ में १०० वर्ष की आयु पूर्ण करके आप उज्जैनी नगरी में स्वर्गवासी हुये।

१२. आचार्य सुस्थित—

काकन्दी नगरी के व्याघ्रापत्य राजकुल में आप उत्पन्न हुये थे तथा ९६ वर्ष की सर्वायु पूर्ण करके वीर सम्वत् ३३९ में कुमारगिरी पर्वत पर स्वर्गवासी हुये।

१३. आचार्य सुप्रतिबद्ध—

ये आचार्य सुस्थित के सगे भाई थे।

१४. आचार्य इन्द्रदिन्न—

इनका शुद्ध संस्कृत नाम इन्द्रदत्त प्रतीत होता है। आप कौशिक गोत्रीय ब्राह्मण थे। वीर सम्वत् २८० में आपका जन्म तथा ३७६ में स्वर्गवास हुआ।

१५. आचार्य दिन्न—

आप गोतम गौत्रीय थे।

१६. आचार्य सिंहगिरि—

आप कौशिक गोत्रीय ब्राह्मण थे।

१७. आचार्य वज्रस्वामी—

इनकी माता का नाम सुनन्दा था और पिता धनगिरि थे। इनका जन्म वीर सम्वत् ४९६ (३१ ई० पू०) हुआ था एवं दक्षिण के रथावर्त पर्वत पर अनशन पूर्वक वीर सम्वत् ५८४ में आप स्वर्गवासी हुए।

१८. आचार्य वज्रसेन—

मालवा प्रदेश के दशपुर (मन्दसौर) नगर के रूद्रसोम पुरोहित के घर आपका जन्म वीर सम्वत् ४९२ में हुआ था, एवं वीर सम्वत् ६२० में १२९ वर्ष की आयु पूर्ण कर आप स्वर्गवासी हुए।

१९. आचार्य रथस्वामी—

आप वशिष्ठ गोत्रीय ब्राह्मण थे। आपका दूसरा नाम आर्य-जयन्त भी आता है।

आचार्य रथस्वामी के बाद स्थाविरावली में केवल नाम-मात्र का परिचय आता है, जिसका उल्लेख निम्न प्रकार है—

आचार्य पुष्पगिर	कौशिक गोत्र
आचार्य फल्गुमित्र	गौतम गोत्र
आचार्य धनगिरि	वशिष्ठ गोत्र
आचार्य शिवभूति	कुत्वच्छस गोत्र
आचार्य भद्र	कश्यप गोत्र
आचार्य नक्षत्र	कश्यप गोत्र
आचार्य रक्ष	कश्यप गोत्र
आचार्य नाग	गौतम गोत्र
आचार्य जेहिल	वशिष्ठ गोत्र
आचार्य विष्णु	माठर गोत्र
आचार्य कालक	गौतम गोत्र

ये तीसरे कालकाचार्य हैं, इनका समय वीर संवत ७२० माना जाता है। आचार्य सम्पालित तथा भद्र ये दोनों ही महापुरुष आचार्य कालक के शिष्य थे।

इसके पश्चात् के आचार्यों का भी केवल उल्लेख किया

गया है।

आचार्य वृद्ध	गौतम गोत्र
,, संघपालित	,, ,,
,, श्री हस्ती	कश्यप ,,
,, धर्म	साक्य ,,
,, सिंह	कश्यप ,,
,, धर्म	,, ,,

इनके वाद के आचार्यों के विषय में जानकारी हेतु जैन इतिहास देखना उचित होगा। उपरोक्त शाक्षी के लिए यदि आप चाहें तो 'हमारा इतिहास' मूल लेखिका महासती श्री चन्दन कुमारी जी मा० की पुस्तक का अवलोकन कर सकते हैं।

जैन वीर जो पहले वैष्णव थे

युद्ध भूमि में अपने पौरुप एवं पराक्रम को प्रमाणित करने वाले को वीर कहा जाता है। इस क्षेत्र में भी जैनों का महत्व-पूर्ण स्थान रहा है। वीरता किसी जाति-विशेप की सम्पत्ति नहीं है। जैन धर्म में दया प्रधान होते हुए भी वे लोग अन्य जातियों से पीछे नहीं रहे हैं। भारतवर्प की प्रायः सभी रियासतों में कामदार [मंत्री], भण्डारी [भण्डार पर], खजांची आदि उच्च पदों पर वहुधा जैन ही रहे, जिन्होंने देश की आपत्ति के समय महान सेवायें की हैं। उन्हीं में से भामाशाह, आशाशाह, वस्तुपाल, तेजपाल और विमलशाह का नाम वड़ी श्रद्धा के साथ लिया जाता है। इसके अतिरिक्त–

१. भारतीय इतिहास के सुप्रसिद्ध सम्राट विम्वसार श्रेणिक जैन धर्म का आधार स्तम्भ था।

२. उनके पुत्र अजातशत्र-कुणिक जन धर्म के संरक्षक प्रतापी नरेश थे।

३. सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य, जिनका जन्म क्षत्रिय कुल में हुआ था, मूलतः जैन धर्म के ही संरक्षकों में से एक हैं।

४. राजावलिक थे, नामक कन्नड् ग्रन्थ अशोक सम्राट को भी जन वतलाता है। महाकवि कल्हण ने अपने संस्कृत ग्रन्थ 'राजतरंगिणी' में अशोक द्वारा कश्मीर में जैन धर्म के प्रचार करने का उल्लेख किया है।

५. अशोक के उत्तराधिकारी सम्प्रति के वारे में 'विश्ववाणी' मासिक पत्रिका ने १६४१ में यह प्रकाशित किया था कि सम्राट संप्रति ने अरब स्थान और फारस में जैन संस्कृति के केन्द्र स्थापित किये थे ।

६. महाप्रतानी एवं सम्राट महामेघ वाहन खारवेल महाराज जैन थे ।

७. दक्षिण भारत के इतिहास पर दृष्टि डालने से ज्ञात होता है कि प्रतापी नरेश तथा गंगराज्य के संथापक महाराज को गुणीवर्मन ने आचार्य सिंहनंदि के उपदेश से शिवमग्गा के समीप एक जिन मन्दिर बनवाया था ।

८. महाराज कोगुणी के वंशज अविनीत नरेश ने अपने मस्तक पर जिनेन्द्र भगवान की मूर्ति विराजमान कर कावेरी नदी को बाढ़ की अवस्था मे पार किया था ।

६. महाराज नीतिमार्ग और बूतग जिन धर्म परायण राजा थे ।

१०. महाराज मारसिंह गंगवंश के शिरोमणि पराक्रमी, निर्भीक, धार्मिक जैन नरेश थे ।

११. पांचवी सदी में कदंब नरेश वर्मा और उनके पुत्र रवि वर्मा अपने पराक्रम और जैन धर्म के लिये प्रख्यात थे ।

१२. राष्ट्रकूट वंश में जैन धर्म की विशेष मानता थी । सम्राट अमोघ वर्ष जिनेन्द्र भक्त, विद्वान, पराक्रमी, पुण्यचरित्र तथा व्यवस्थापक नरेश थे । इसी वंश में वंकेय, श्री विजय, नरसिंह आदि अनेक पराक्रमी जैन प्रतापी पुरुष हुए हैं ।

१३. धारवाड़, वेलगांव जिलों में शासन करने वाले महामंडलेश्वर नरेशों में महान योद्धा नरेश पृथ्वीराज, शान्तिवर्मा, कलासैन, कन्नेकर, कीर्तिवीर्य, लक्ष्मीदेव, मल्लिकार्जुन आदि जैन शासन के प्रति विशेप अनुरक्त थे ।

१४. दशवीं, तेहरवीं सदी तक कोल्हापुर, वेलगांव में अपने पराक्रम द्वारा शान्ति का राज्य स्थापित करने वाले शीलहार नरेश जैन थे।

१५. जैन सेनापति वोप्पण को एक शिलालेख में वड़ा प्रतापी वताया है। पांचवी से बारहवीं शताब्दी तक बम्बई प्रान्त मैसूर एवं दक्षिण भारत में चालुक्य वंशीय जैन नरेशों का शासन था।

१६. कलचुरि नरेशों में महामंडलेश्वर विज्जल अपने पराक्रम और जिनेन्द्र भक्ति के लिए विख्यात थे।

१७. महाराज विनयादित्य के जिन भक्त पुत्र एरयंग महान योद्धा थे, उन्होंने श्रमणवेल गोला के जिन मन्दिरों का जीर्णोद्धार कराया था।

१८. ईसवीं सन् ११६० के शिलालेख में चामुन्डराय का उल्लेख आया है। इनके विषय में कहा जाता है कि इन से वढ़ कर वीर सैनिक, जैन धर्म भक्त, सत्यनिष्ठ व्यक्ति कर्नाटक में कोई और नहीं था।

१९. जिन धर्म भक्त सेनापति हुल्ल और अमात्य गंग का नाम भी उल्लेखनीय है।

२०. दक्षिण भारत की जैन वीरांगनाओं में जवकेयावी, जवकलदेवी, सावियव्वी, भैरवीदेवी आदि विशेष विख्यात हैं।

२१. श्री विश्वेश्वरनाथरेऊ कृत 'भारत के प्राचीन राजवंश' [पृष्ठ २२७–२२८] और रायवहादुर महामहोपाध्याय पंडित गौरीशंकर, हीरानन्द ओझ के 'राजपूताना का इतिहास' [पृ० ३६३] के अनुसार वीर भूमि राजपूताना में शासन करने वाले चौहान, शोलंकी, गहलौत आदि जैन धर्मावलम्बी वीर पुरुष थे। अजमेर के नरेश पृथ्वीराज प्रथम ने जैन मुनि अभयदेव के प्रति अपनी भक्ति प्रदर्शित की थी।

२२. पृथ्वीराज द्वितीय जैन धर्म के संरक्षक थे एवं उनके चाचा महाराज सोमेश्वर जैन धर्म के प्रेमी थे।

२३. शौलंकी नरेश अश्वराज तथा उनके पुत्र अल्हणदेव जिन भक्त थे।

२४. परिहार वंशी काक्कुक नरेश कीर्तिशाली तथा जैन धर्मावलम्बी थे।

२५. महाराज भोज के सेनापति कुलचन्द्र जैन थे।

२६. प्रतापी नरेश सिद्धराज, जयसिंह के मन्त्री मुज्जल और शांतु जैन थे।

२७. महाराज कुमारपाल अनेक युद्ध विजेता तथा जिन धर्म भक्त थे।

२८. राठौर नरेश सिद्धराज जैन थे।

२९. मारवाड़ के नरेश विजयसिंह के सेनापति डूमराज जैन थे।

३०. स्मिथ और कनिंगहम ने जिन वीर सुहलदेव को भी जैन माना है।

३१. खारवेल के शिलालेख से पता चलता है कि मगध का राजा नन्द कलिग को जीत कर अग्रजिन की मूर्ति ले गया था। अतः राजानन्द जैन धर्म का अनुयायी होना चाहिये और यह नंद मौर्यों का पूर्वज था।[1]

३२. श्री पी० बी० देसाई ने लिखा है कि मार्कण्डेय पुराण के तेलगू अनुवाद के अनुसार आन्ध्र देश के चार क्षत्रियवंश नन्दवंश से निकले थे और नन्द कलिग पर राज्य करता था। तथा जैन धर्म का अनुयायी था।

३३. गंग राज्य वंश बहुत प्राचीन है, उसका सम्बन्ध इक्ष्वाकु

१—दक्षिण भारत में जैन धर्म—पृष्ठ ६२

वंश से बतलाया जाता है। लुईराईस ने उसे दक्षिण का प्रमुख जैन राजवंश कहा है।[1]

३४. श्री रामस्वामी आयंगर ने लिखा है कि मुष्कर या मुखर के राज्यकाल में जैन धर्म राज्य धर्म हो गया था। उसके पूर्वजों में से केवल तीसरे और चौथे राजा को छोड़ कर शेष निश्चय ही जैन धर्म के अनुयायी थे। उसका उत्तराधिकारी अविनीत जैन था और अविनीत का उत्तराधिकारी दुर्विनीत प्रसिद्ध जैन वैयाकरण पूज्यपाद का शिष्य था।

३५. राजा शिवभार द्वितीय सैगोट्ट का छोटा भाई दुग्गभार इरेयप्प भी जैन था।

३६. मारसिंह ने जिनेन्द्रदेव के सिद्धान्तों को सुनियोचित किया और अनेक स्थानों पर बसदियों और मानस्तम्भों का निर्माण कराया।

३७. खारवैल जैन धर्मावलम्वी था, परन्तु वैदिक विधानानुसार उसका महाराज्याभिषेक हुआ और उसने राजसूय-यज्ञ भी किया। ब्राह्मणों की जातीय संस्थाओं को उसने भूमि प्रदान की। इससे यह भली-भांति स्पष्ट है कि जैन धर्मानुयायी होते हुए प्राचीन राष्ट्रीय नियमों का पालन करने के लिए उसे पूर्ण स्वतन्त्रता थी।[2]

३८. अग्निकुल में उत्पन्न परमार परिहार, चालुक्य, सोलंकी और चौहान राजपूत भी जैन धर्म में दीक्षित हो गये थे।

३९. मैसूर के कादम्बवंशी राजा अधिकतर जैनी थे।

४०. सन् १९२२–२३ की एपिग्राफी रिपोर्ट में वर्णित है कि कांची के कुछ पल्लव राजा, कुछ पाण्डराजा, पश्चिमी चालक्य राजा, गंगवंशीय तथा राष्ट्रकूट वंशीय राजा पक्के जैनी थे।

२–दक्षिण भारत में जैन धर्म–पृ० ७६

३–जैन वीरों का इतिहास और हमारा पतन–पृ०७६

पश्चिमी चालुक्य राजा प्रथम पुलकैशी, विजयादित्य व विक्रमादित्य बहुत प्रसिद्ध जैन राजा थे।

४१. कलचूरी वंश का वज्जाल राजा तथा महेन्द्रवर्मन भी जैन माने गये हैं।

४२. जयसिंह के पुत्र मूलराज ने गुजरात में अणहिल पाटन को अपनी राजधानी बनाया, यह जैन धर्म का अनुयायी था।

४३. महाराज कुमारपाल ने जैन धर्म का बड़ी उत्कृष्टता से पालन किया और सारे गुजरात को एक आदर्श जैन-राज्य बनाया।

४४. राठौर राजा अमोघ वर्ष मान्यखेट के राष्ट्रकूट (राठौर) राजा गोविन्द का तृतीय पुत्र था। इसी के द्वारा लिखाया गया एक ताम्रपत्र मिला है, जिसमें जैन देवेन्द्र को दिये गये दान का उल्लेख है।

४५. इसके अतिरिक्त राजपूताने के राठौर वंशीय हरि वर्मा, विदग्ध राज, मम्मट धवल आदि भी मूलतः जैन अनुयायी हुए थे।

४६. जोधपुर के राजवंश में आयस्थानजी, धूहड़जी, रायपालजी, मोहनजी, भीमराजजी, रामचन्द्रजी आदि जैन धर्म के ही अनुयायी थे।

मौर्य वंश का सम्प्रति राजा बहुत प्रसिद्ध हुआ है। वह सम्भवतः कुणाल का सबसे छोटा पुत्र था। वह जैन धर्म का अनुयायी था। आर्य सुहस्ती ने उसे जैन धर्म में दीक्षित किया था। वह शत्रुन्जय तीर्थ का एक प्रधान उद्धारकर्त्ता था। वह त्रिखण्ड भारताधिप तथा अनार्य देशों में भी श्रमण विहारों का प्रवर्तक महाराज था। उसके आदेश से जैन साधु अनार्य देशों में गये। इन सब से स्पष्ट है कि मौर्यकाल में संस्कृति का स्तर पर्याप्त अच्छा था।[1]

१–भगवत्दत्त : भारतीय संस्कृति का इतिहास–पृ० ८७

उपरोक्त ऐतिहासिक विवेचन से स्पष्टतः यह कहा जा सकता है कि भारतीय क्षत्रिय राजाओं ने सम्भवतः हिंसा और कर्म-काण्डों के प्रति अपनी उदासीनता के कारण ही जैन धर्म में दीक्षा ली थी और वे सिर्फ इस दीक्षा के कारण ही अपने आप को हिन्दू या आर्य या वैष्णव संस्कृति से बिल्कुल भिन्न और अलग मानने लग गये हों, कम से कम यह विश्वसनीय नहीं लगता।

प्रमाण के लिये इसी सन्दर्भ में अन्य क्षत्रिय राजाओं और उनके समकालीन सांस्कृतिक चेतना के बदलते मूल्यों के अन्तर्गत जैन धर्म के प्रति उनकी आस्था की बात भी कही जा सकती है।

'क्षत्रिय वर्ण पहले विशेष रूप से जैन धर्मानुयायी ही था। वे क्षत्रिय वीर इसी धर्म को जगत अथवा अपनी आत्मा का कल्याणकारी धर्म समझते थे। हजारों राजा ऐसे हो चुके हैं जो जैन थे या जैन धर्म में दीक्षित हुए थे। जैन धर्म के प्रवर्तक चौबीसों ही तीर्थंकर क्षत्रिय थे।'[1]

मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्तः—अलेकजेण्डर (सिकन्दर) के उद्दण्ड भुजदण्ड से विलोडित भारतवर्ष का उद्धार मौर्य चन्द्रगुप्त ने ही किया था और आज तक इतिहास पुरातत्ववेत्ताओं ने जितने भी सर्व प्राचीन शिलालेख एकत्रित किए हैं उन सबमें प्राचीनतम शिला-लेख चन्द्रगुप्त के ही मिले है। जैन ग्रन्थों में मौर्य सम्राट चंद्रगुप्त के जैन धर्मावलम्बी होने व भद्रबाहु स्वामी से जिन दीक्षा लेकर उनके साथ दक्षिण को प्रस्थान करने का विवरण है।

मौर्य सम्राट सम्प्रतिः—चन्द्रगुप्त के पौत्र अशोक के पीछे सम्प्रति गद्दी पर बैठे। ये जैन कहे गए हैं और इनके बनाये हुए जैन मन्दिर अनेकानेक मौर्येतर स्थानों में भी कहे जाते हैं। जैन

१—जैन वीरों का इतिहास और हमारा पतन, लेखक अयोध्या प्रसाद गोयलीय 'दास'

लेखों के अनुसार सम्प्रति ऐसे विभवशाली थे मानो जैन धर्म के लिए दूसरे अशोक ही थे। भारतवर्ष का शासन १३७ वर्ष तक मौर्यवंश के हाथ में रहा, जिसमें चन्द्रगुप्त, सम्प्रति और वृहद्रथ ये तीन प्रसिद्ध जैन धर्मी राजा हुए।

महामेघवाहन राजा खारवेल:-जैन कुलोत्पन्न 'खारवेल' का परिचय पुराणरत्न पं० गंगाधर सामन्त शर्मा की 'प्राचीन कलिंग' नाम की पुस्तक में लिखा है—कलिंग के जैन राजे 'ऐर्य' कहलाते थे। महामेघवाहन इनकी उपाधि होती थी। कलिंग का 'ऐर' वंश के चैत्र राजा द्वारा उद्धार हुआ इसलिए तब से कलिंग देश के ऐर चैत्र वंशीय कहलाने लगे। इस वंश में ९ राजा हो गये हैं।

अग्निकुल के पराक्रमी राजा:—परमार, चौलुक व सोलंकी और चौहान अग्निकुल के राजपूत समझे जाते हैं। जैन धर्म के तेईसवें तीर्थंकर धर्मवीर पार्श्वनाथ के समय में परमार वंशी राजा उत्पळ (उपलदे) ने ओसिया पट्टन नगर (जोधपुर के पास) बसाया था, जैनाचार्य के उपदेश से जैनधर्मी हुआ, इसके साथ ही ३६ कुल के (सवा लाख) राजपूतों ने जैन धर्म स्वीकार किया, ओसिया नगर में जैन धर्म में दीक्षित हुए, इसलिए ये सब राजपूत ओसवाल कहलाये, इसी जाति में भामाशाह, आशाशाह, वस्तुपाल और तेजपाल जैसे वीर-चूड़ामणि नररत्न पैदा हुए हैं।

चालुक्य (सोलंकी) जैन राजा.—चालुक्य नरेशों की उत्पत्ति राजपूताने के सोलंकी राजपूतों से कही जाती है। दक्षिण में इस राजवंश की नींव जमाने वाला एक पुलकेशी नाम का सामन्त था। इसके उत्तराधिकारी-कीर्तिवर्मा, मंगलीश, पुलकेशी (द्वितीय) हुए थे, सब जैन धर्म के अनुयायी थे।

महाराजा कुमारपाल जैनः—आपकी राजधानी अनहिलपुर-पाटन नगर में थी। हेमचन्द्राचार्य ने महावीर चरित्र में आपकी

आज्ञा का पालन उत्तर दिशा में तुर्कस्थान, पूर्व में गंगा नदी, दक्षिण में विन्ध्याचल और पश्चिम में समुद्र पर्यन्त के देशों में होना लिखा है। यज्ञों में पशु वलि देना वन्द किया। तभी से अन्न का हवन होना शुरू हुआ। लाखों रुपये व्यय करके जैन शास्त्रों का आपने उद्धार कराया और अनेक पुस्तक भण्डार स्थापन किए। हजारों जैन मन्दिरों का जीर्णोद्धार किया तथा नए वनवाए। आपने जैन धर्म के प्रभाव को वहुत वढ़ाया।

चौहान वंशीय जैन योद्धा:—राव लक्ष्मण (लखमसी) जिन्होंने नाडौल में स्वतन्त्र राज्य कायम किया था। इस कुल के अन्तिम राजा अल्हणदेव थे। लाखा ने नाडौल का किला वनवाया था। उसके चौवीस पुत्र थे। उनमें से एक का नाम 'दादराव' था, वही भण्डारी कुल का जन्मदाता था। विक्रम संवत् ११४६ अथवा ई० सन् ९९२ में यशोभद्रसूर्यने दादराव को जैन धर्म ग्रहण कराया था और उसके कुल को ओसवाल जाति में मिलाया था।

गंगवंशीय जैन राजा:—इक्ष्वाकु या सूर्यवंश में 'धनंजय' थे, उनकी स्त्री गन्धारदेवी थी। इनके पुत्र राजा हरिश्चन्द्र अयोध्या में हुए, इनकी रानी रोहणीदेवी थी तथा इनके पुत्र का नाम भरत था। भरत की पत्नी विजयमहादेवी ने गर्भावस्था में गंगा नदी में स्नान किया था और उसी समय उन्हें पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई। अतः उस पुत्र का नाम गंगादत्त रखा गया और उसके वंशज गंगवंशीय कहलाये। इसी वंश में राजा प्रियवन्धुवर्मा हुए। फिर राजा कम्प हुए। इनके पुत्र राजा पद्मनाथ थे। इन के राम और लक्ष्मण दो पुत्र हुए। पद्मनाथ अपने दोनों पुत्रों व एक छोटी पुत्री के साथ दक्षिण को प्रस्थान कर गये। दक्षिण में पेरूर स्थान (जिला कुड़ाया अव भी इसको गंकपरूर कहते हैं) पर जव ये पहुँचे तव वहां कणुरगण के आचार्य सिंहनन्दि

(दिगम्बर जैन मुनि) से भेंट हुई। उनका आशीर्वाद पाकर (श्री जिनेन्द्र अपना देव) श्री जैनधर्म अपना धर्म स्थिर कर उन्होंने राज्य व्यवस्था प्रारम्भ की।

समरकेसरी सेनापति चामुण्डराय:—इनका जन्म ब्रह्म-क्षत्रिय कुल में हुआ था। यह बड़े शूरवीर और पराक्रमी थे। जैसे यह वीर थे, वैसे ही विद्वान एवं साहित्य के प्रेमी थे। इन्होंने स्वयं कई ग्रन्थ लिखे हैं। अन्त में सांसारिक सम्बन्ध त्याग कर अपना जीवन सफल किया। इन्होंने श्रवणवेल गोल में भद्रवाहु स्वामी की विशाल मूर्ति स्थापित की थी।

सेनापति गंगराज जैन:—होयसलवंशीय महाराज विष्णुवर्द्धन के राज्य में जैन-धर्मी गंगराज ने सेनापति का कार्य किया। महासामन्ताधिपति, महाप्रचण्ड दण्डनायक, जिन धर्म रत्न, यह गंगराज को उपाधियां मिलीं।

कलचूरिवंशीय जैन राजा:—मध्य प्रान्त का सबसे बड़ा राज-वंश कलचूरिवंश था। यह वंश प्रारम्भ से जैन धर्म का पोषक था, पांचवीं, छठवीं शताब्दी के अनेक पाण्ड्य और पल्लव शिला लेखों में उल्लेख है कि कलभ्र लोगों ने देश पर चढ़ाई की और चोल और पाण्ड्य राजाओं को पराजय कर अपना राज्य स्थापित किया था। प्रोफेसर रामस्वामी अय्यंगर ने वेल्विकुडि के ताम्र-पत्र तथा तमिल भाषा के 'पेरियपुराणम्' के आधार पर ये प्रमाणित किया है कि ये कलभ्रवंशीय प्रतापी राजा जैन धर्म के पक्के अनुयायी थे।

राठौर राजा अमोघवर्ष जैन:—यह अमोघवर्ष, मान्यखेट के राष्ट्रकूट (राठौड़) राजा गोविन्द का तृतीय पुत्र था। जैन देवेन्द्र को दिये गये दान का उल्लेख शक संवत् ७८२ (वि० स० ९२७; में स्वयं ने ताम्रपत्र पर किया है, यह दान

मोघवर्ष ने अपनी राजधानी मान्यखेट में दिया था।

गुणभद्रसूरि कृत उत्तर पुराण में लिखा है कि अमोघवर्ष श्री जिनसेनाचार्य को जगत के मंगल रूप में मानता था तथा उनको प्रणाम कर अपने को पवित्र समझता था। यह राजा दिगम्बर जैन मत का अनुयायी था और जिनसैन का शिष्य था।

राजपूताने के जैन राठौड़ राजे:—वि० सं० १०५३ (ई० स० ९९७) का एक लेख बीजापुर से मिला है, यह स्थान जोधपुर राज्य के गौड़वाड़ परगने में है। इसमें हथूंडी के राठौड़ों की वंशावली इस प्रकार है—हरिवर्मा, विदग्धराज, मम्मट, धवल इसी धवल ने अपने दादा विदग्धराज के बनाये हुए जैन मन्दिर का जीर्णोद्धार कर ऋषभनाथ (जैन धर्म के प्रथम तीर्थङ्कर) की मूर्ति की प्रतिष्ठा की थी।

जोधपुर के राजवंश में जैन धर्म:—रायबहादुर महता विजय सिंह जी दीवान रियासत जोधपुर के जीवन चरित्र में लिखा है कि राठौड़-राव सीहोजी के पुत्र आयस्थान जी ने परगने मालानी के गांव खेड़ में सं० १२३७ में अपना राज्य स्थापित किया, उन के पुत्र घुहड़जी राज्य के उत्तराधिकारी हुए। इनके पुत्र रायपाल जी सं० १२८५ में सिंहासनारूढ़ हुए।

रायपाल जी के चौथे पुत्र मोहन जी थे। इनके पुत्र भीम-राज जी थे, उनके वंश के भीमावत राठौड़ कहलाते हैं। बाद में मोहन जी ने जैन धर्म के उपदेशक शिवसैन ऋषीश्वसर के उप-देश से जैन मत का अवलम्बन कर दूसरा विवाह ओसवाल जाति के श्री माल जीवणोतकाजू जी की कन्या से किया, जिससे संप्रति सैन जी उत्पन्न हुए। इनके वंश के मोहणोत ओसवाल कहलाते हैं। मोहन जी की २०वीं पीढ़ी में उत्पन्न रामचन्द्र जी ने एक जैन मन्दिर श्री चिंतामणि पार्श्वनाथ जी का सं० १७०२ में

बनवा कर प्रतिष्ठा की। यह मन्दिर कृष्णगढ़ में आज भी विद्यमान है।

इन्हीं के वंशज जयमल जी फलौदी में हाकिम थे। सं० १६८१ में जालौर शतरूंजा, सांचौर, मेड़ता और सिवाना में इन्होंने जैन मन्दिर बनवाये।

बच्छवतों की जैन धर्म के प्रति आस्था:–बीकानेर में रागड़ी के चौक में एक जैन उपासरा है जो पहले कभी बच्छावत कुल का राजमहल था।

बच्छराज जिसके नाम से यह वंश बच्छावत कहलाया, यह मारवाड़ के बोथरों की उत्तम जाति में से था जिनकी रगों में जालौर के भूपति वीर चौहान कुंवर सामंत सिंह का वीर रक्त बहता था। बच्छराज बड़ा ही प्रेमी और धर्मात्मा, वीरपरुष था, उसने जैन धर्म की प्रभावना के लिए बहुत कुछ उद्योग किये। शत्रुंजय की यात्रा भी की।

इन्हीं के वंश में वरसिंह और नागराज, ये दो बड़े प्रसिद्ध वीर थे। उन्होंने जैन साधुओं को गद्दी पर बैठाने के उत्सव किए, संघ चलाये और अनेक जैन मन्दिर बनवाये।

वस्तुपाल, तेजपाल:–ये दोनों सगे भाई थे, जाति के पोरवाड़ थे, लेकिन जैन धर्म के पालने वाले थे। जैन मन्त्रियों और सेनापतियों में वस्तुपाल और तेजपाल का नाम सर्वोपरि है। जैन धर्म की प्रभावना के जो कार्य इन्होंने किए हैं, उनमें संसार में इनका नाम अमर हो गया है।

इसी प्रकार जैन और वैष्णव की एकता के प्रति सतत प्रयत्न करने वाले राजाओं में सम्राट बुक्क का नाम भी लिया जा सकता है।

सम्राट बुक्क तोराजपि थे। राज पद पर आते ही उन्होंने

सम्पूर्ण वेदविद्या का संग्रह एवं संशोधन करने का निश्चय कर विद्यारण्य के नेतृत्व में एक पीठ की स्थापना की। देश के समस्त विद्वान पण्डितों को उस पीठ में एकत्र कर उन्हें वेद ग्रन्थों पर नये भाष्य लिखने का आदेश दिया। दूसरा भी महत्वपूर्ण कार्य उन्होंने किया। शैव-वैष्णव, जैन, इन पन्थों का आपसी वैमनस्य समाप्त कर हिन्दू धर्म की विघटनकारी वृत्तियों को रोक दिया। प्राचीन काल में ये पन्थ भेद किस सीमा तक पहुँच गए थे तथा जिन पुराणों ने समस्त देवताओं में ऐक्य स्थापित किया था उन्होंने ही बाद में भेदों की धूम कैसी मचा दी थी। हिन्दू-धर्म का ऐक्य इन्हीं भेदों के कारण नष्ट हुआ था। परन्तु इन सभी दुष्प्रवृत्तियों को रोक कर सम्राट बुक्क ने घोषणा की कि जैन दर्शन एवं वैष्णव दर्शन में कोई भेद नहीं है। वैष्णव के हाथों जैनियों का यदि कुछ लाभ हानि होता है तो वह अपना ही हानि लाभ है। ऐसा वैष्णव समझें और जैन भी इस बात का विश्वास रखें कि उनकी रक्षा करने का व्रत वैष्णव यावच्चन्द्र दिवा करो निभाते रहेंगे। (ऐपिग्राफि का कर्नाटिका, १३६ शिलालेख, १३६८ ई०)।[1]

१-हिन्दू समाज : संघटन और विघटन -डा० सहस्त्र बुद्धे - पृष्ठ १३१

जैन व वैष्णव मूर्तियों की एक मन्दिर में स्थापना

शिल्प की दृष्टि से भी प्राचीन मन्दिरों में कई वैदिक देवताओं की मूर्तियां एवं उनके विभिन्न प्रतीकात्मक चेष्टाओं से सम्बद्ध चित्र हमें जैन मन्दिरों में प्राप्त होते हैं, जैसे कृष्ण को ही लें।[1]

जैन शिल्प में कृष्ण-अंकन की बहुलता कृष्ण के जैन धर्म में लोकप्रिय होना प्रमाणित करती है। कृष्ण-जीवन से सम्बन्धित विभिन्न घटनाओं के स्वतन्त्र या नेमिनाथ से सम्बद्ध कई शिल्पगत अंकन आज के मध्ययुगीन जैन मन्दिरों में देखे जा सकते हैं।

११वीं सदी के प्रारम्भ में निर्मित विमलवसही मन्दिर के गर्भगृह नं० १० की छत पर उत्कीर्ण वृत्ताकार घेरे के मध्य जल से भरे तालाब में क्रीड़ा करते कृष्ण उनकी रानियों और नेमिमाथ को चित्रित किया गया है। दूसरे घेरे में नेमि को कृष्ण के आयुद्ध-शाला में शंख बजाते हुए उत्कीर्ण किए जाने के साथ ही दोनों के मध्य हुए शक्ति परीक्षण को भी चित्रित किया गया है। तीसरे घेरे में राजा उग्रसैन राजकुमारी राज्यमती और विवाह पंडाल प्रदर्शित है। साथ ही नेमि का विवाह के लिए प्रस्थान,

---

१—मारुति नन्दन प्रसाद तिवारी : जैन साहित्य और शिल्प में कृष्ण : कादम्बिनी—अक्टूबर १९७२, पृ० ८२,

पशुओं के प्रति उनका द्रवित होना, दीक्षा लेना और कैवल्य प्राप्ति आदि दृश्यों को अंकित किया गया है। इसी प्रकार का एक अन्य चित्रण लूणवसही मन्दिर में भी देखा जा सकता है।

विमलवसही मन्दिर के देवकुलिका : सैल : नं० २६ की छत पर कृष्ण द्वारा कालिया-दमन का दृश्य उत्कीर्ण है। सम्पूर्ण चित्रण तीन भागों में विभक्त है। ऊपरी भाग के अतिरिक्त निचले भाग में कृष्ण को शेषनाग की शय्या पर लक्ष्मी के साथ विश्राम करते व्यक्त किया है। इस आधार पर डा० यू० पी० शाह की धारणा है कि ये समस्त अंकन हिन्दू कथानक का अनुसरण करते हैं।

१३वीं सदी के प्रारम्भ में निर्मित आज के लूणवसही मंदिर में रंगमण्डप के बायीं ओर कृष्ण जन्म की कथा, मध्य में कृष्ण की माता देवकी खाट पर लेटी हैं। देवकी के पार्श्व में एक सहायक स्त्री आकृति बैठी है और दूसरी पंखा झल रही है। उस स्थान से बाहर निकलने के सभी मार्ग बन्द हैं। कृष्ण का जन्म कारावास में हुआ था, इसलिए समस्त द्वारों को बन्द दिखाया गया है। इसी अंकन के समीप कृष्ण और गोकुल का दृश्य है। एक फलक पर कृष्ण पालने में झूलते दिखाये गए हैं। इसी प्रकार झूले में लेटे कृष्ण द्वारा झूले से कूद आने का भाव प्रदर्शन किया गया है। गर्भ नं० ११ की छत पर उत्कीर्ण एक विशाल चित्रण में नेमिनाथ के संसार-त्याग का दृश्य सात भागों में विभक्त है, जिसमें कृष्ण से सम्बन्धित दृश्यों में कृष्ण-जरासंध युद्ध और रानियों के साथ कृष्ण और नेमिनाथ का जल-क्रीड़ा करते हुए अंकन प्रमुख है।

इसी प्रकार किला राय पिथौरा गढ़ को ध्यानपूर्वक देखने पर हमें आज उसके जो भी अवशेष बारहवीं शती में कुतुबुद्दीन

ऐवक द्वारा किले के प्रांगण में स्थित इस विशाल मन्दिर को ध्वस्त कर उसके ऊपर 'दवातुलइस्लाम' नामक मस्जिद के निर्माण के उपरान्त भी आज उपलब्ध हैं, उसके आधार पर भी हिन्दू : वैदिक और जैन की परम्परा समन्विति प्रमाणित होती है।

इस प्राचीन मन्दिर के दो खण्ड थे, पहला गर्भ-गृह, जहां पूजन हुआ करता था, दूसरा वह पांगण जहां लोग एकत्र होते थे, इसे जगमोहन कहा जाता था। यद्यपि गर्भगृह की मूर्तियां तत्कालीन मुगल शासकों द्वारा तलवार से खण्डित कर दी गई हैं तथापि मस्जिद के पीछे आज भी यह गर्भगृह सुरक्षित है और इसकी छत के चारों ओर बीस फिट ऊंची सुन्दर मूर्तियां बनी हुई हैं तथा इसकी सबसे ऊंची प्रस्तर पट्टी पर जैन तीर्थंकर के जीवन से सम्बन्धित दृश्य अंकित हैं।

जगमोहन के चारों कोनों पर जिनमें अब केवल तीन ही शेष हैं, दो मंजिले कमरे हैं, जिनमें जैन तीर्थंकरों के जीवन से सम्बन्धित दृश्य अंकित हैं। मस्जिद की बाहरी दीवारों में भी कुछ प्रस्तर प्रतिमाय पूर्णरूपेण सुरक्षित हैं। मस्जिद की दक्षिणी दीवार पर बाहर की ओर गणेश की एक प्रतिमा है। कुछ मूर्तियां खजुराहो और भुवनेश्वर शैली की भी हैं।[1]

उपरोक्त प्रमाण के आधार पर एक ही मन्दिर में जैन तीर्थंकरों और गणेश की मूर्ति की प्राचीनता इस बात की साक्षी है कि मूलतः आज जो सतही विभिन्नता जैन और सनातनी : हिन्दू : रूढ़िगत अर्थों में धर्मो में मूलतः बड़ा गहरा सामंजस्य है और ये दोनों एक ही हैं। यदि उपरोक्त मन्दिर को जैनियों द्वारा

१—डा० सुरेन्द्र सहाय : पुरातत्व सम्बन्धी लेख, दिनमान, ३ जनवरी १९७१, पृष्ठ: ३२

निर्मित प्रमुखतः जैन मंदिर ही आज के प्रचार अर्थो में हम मान लें, तो गणेश की मूर्ति के प्रति यह अटूट श्रद्धा हमारी प्राचीनतम एकत्व की साक्षी होगी ।

और फिर आज की ही धार्मिक व्यवस्था को लें, तो क्या गणेश निर्विवाद रूप से जैन और सनातनी अन्य धर्मावलम्बियों के समान पूज्य नहीं हैं । किसी भी परम्परा का व्यवहारिक निर्वाह ही उसकी जीवन्तता का साक्षी होता है । जैनियों में विनायक जी के नाम से मंगलकार्यों में सर्वप्रथम पूजे जाने वाले आदिदेव गणेश जी को क्या समान रूप से ऋद्धि-सिद्धि देने वाले देवता का प्रतीक नहीं माना जाता ।

लोक रूढ़ियों की आड़ में इस तरह प्राचीन धर्म और उस की समन्वित सांस्कृतिक चेतना को विभाजित कर देखने वालों को शायद यह हमेशा ध्यान में रखना चाहिये कि रूढ़ियां सिर्फ परिवेशगत तथा परिस्थितियों के आधार पर ही प्रभावशील और परिवर्तित नहीं होतीं, उनके पीछे व्यक्ति की श्रद्धा और भावना की समन्वित पृष्ठ भूमि हुआ करती है ।

पुरलिए से १३ मील की दूरी पर पीतमा एक गांव है, वहां जैन मूर्तियों को ब्रह्म और विष्णु मूर्ति मान कर पूजा जाता है । यहीं शिव मन्दिर में सामने की दीवाल में विशाल आलों में खड़ी हुई दो मनोज्ञ मूर्तियां हैं, जिनके चारों ओर २४ तीर्थंकरों की स्पष्ट खड़्गासन मूर्तियां हैं, यक्षयक्षिणी हैं और चरणों में वैल व गेंडा का चिन्ह बना है ।

दुर्गा मन्दिर में जिस मूर्ति को भगवान विष्णु के नाम से पूजा जाता है । वह मूर्ति भगवान आदिनाथ की है, जिसके चारों ओर चौवीस तीर्थंकरों की मूर्तियां हैं । चरणों में वैलों का स्पष्ट चिन्ह उभरा हुआ है ।

पुरलिया से ५ मील दूर छर्रा ग्राम मे शिव मन्दिर के मुख्य द्वार पर भगवान चन्द्र प्रभु की मूर्ति खड़्गासन है, यक्ष-यक्षिणी सहित है। इसे लोग चन्द्र देवता के नाम से पूजते हैं।

शिव मन्दिर में शिवलिंग के सामने वाली दीवाल में एक वड़े आले में भगवान आदिनाथ की पद्मासन मूर्तिधरणेन्द्र पद्मावती सहित विराजमान है। नीचे भगवान को गोदी में खिलाते हुए मां-बाप, दासियां दिखायी गयी हैं।

मथुरा में कई ऐसी मूर्तियां भगवान नमिनाथ की प्राप्त हुई हैं, जिनमें एक ओर श्रीकृष्ण और दूसरी ओर वलराम भी अंकित हैं।

'जैसलमेर के हिन्दू राजाओं ने जैन धर्म के प्रचार-प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान दिया है, जैसा कि पहले भी कहा गया है कि यह क्षेत्र जैन मुनिओं की तपोभूमि रहा है। जब भी ये यहां आते थे, उनकी सेवा में जैनियों के साथ हिन्दू भी रहा करते थे। चौहदवीं शताब्दी में यहां कई जैन मन्दिरों एवँ उपाश्रयों का निर्माण हुआ है। इस काल में जैसलमेर के महाराजा लक्ष्मण सिंह एवं उनके उत्तराधिकारी वैरसी ने हिन्दू और जैन धर्मों के मध्य समन्वय स्थापित करने में ठोस प्रयत्न किये थे, उस समय हिन्दू मन्दिरों में जैन धर्म के आराध्य देवों की प्रतिमाओं को प्रतिष्ठापित करना कितने साहस का काम रहा होगा। लक्ष्मी नाथ जी, सूर्य भगवान एवं रत्नेश्वर महादेव के देवालयों में पार्श्व नाथ जी की प्रतिमायें स्थापित की गयी थीं। जिन्हें आज भी प्रत्यक्ष देखा जा सकता है। धर्म समन्वय के ऐसे उदाहरण अन्यत्र दुर्लभ हैं। वस्तुतः यह कार्य धर्म समन्वयता के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखने योग्य है। इन समन्वयी मंदिरों में एक साथ ही पूजा होती है, भोग चढ़ता है तथा आरती उतारी जाती है। ऐसा ही

एक मन्दिर जैसलमेर के बरसलपुर ठिकाणे (अभी बीकानेर जिले में) में स्थित है। यहां की लक्ष्मीनाथ जी की मूर्ति के पास ही श्री पार्श्वनाथ जी की प्रतिमा विद्यमान है। मन्दिर में एक शिला लेख उपलब्ध है, जिसके अनुसार यदि इन दोनों देवों की पूजादि एक साथ नहीं की जायेगी तो इस क्षेत्र में दैवी विपत्तियां विनाश के कगार ढा देंगी। इन देवालयों में हिन्दू व जैनी दोनों ही पूजार्थ जाया करते है।

जैसलमेर नगर में दस जैन मन्दिर हैं तथा ब्रह्मासर, देवीकोट, लुद्रवा, अमर सागर आदि स्थानों पर भी जैन मन्दिर बने हुए हैं। धर्म समन्वय की कितनी गहरी बात है कि इन मन्दिरों के पुजारी परम्परागत रूप से भोजक जाति के हिन्दू ब्राह्मण ही हुआ करते हैं। हिन्दू देवालयों में जब जैनों के आराध्य देवों की प्रतिमायें स्थापित की गयीं तो जैन मन्दिरों में भी हिन्दू धर्म के देवताओं की मूर्तियां विराजमान की गयी थीं। मन्दिरों की भीतों एवं छतों पर कहीं-कहीं कृष्ण लीलायें आदि आकीर्ण हैं।

जैन आचार्यों ने न सिर्फ अपने धर्म के प्रसार के लिए ही कार्य किया, अपितु यहां की हिन्दू संस्कृति के सम्वर्द्धन में भी महत्वपूर्ण योगदान दिया है। जैसलमेर के सात सुप्रसिद्ध ज्ञान भण्डारों में संग्रहीत हस्तलिखित एवं ताड़ पत्रीय ग्रन्थों के अवलोकन से ज्ञात होता है कि जैनाचार्यों ने हिन्दू धर्म विषयक अन्यान्य ग्रन्थों की संरचना की थी तथा बिखरे लोक साहित्य को लिपिबद्ध भी किया था।[1]

१—जैन जगत — समन्वय विशेषांक पृष्ठ २०७ पुरुषोत्तम छंगाणी

भारत में जैन तीर्थ

जैन भारत के ही निवासी हैं, जैन दर्शन भारत की ही एक अमूल्य निधि है. इनके चौबीसों तीर्थन्करों ने भारत में ही जन्म लिया और यहीं से मोक्ष गए, इसलिए जिन स्थानों पर तीर्थन्करों ने जन्म लिया हो, दीक्षा धारण की हो, पूर्ण ज्ञान प्राप्त किया हो या मोक्ष प्राप्त किया हो उन स्थानों को जैनी तीर्थस्थान मानते हैं और वो सब तीर्थस्थान भारत में ही हैं जो भारत के सभी प्रान्तों में विद्यमान हैं। जैनों के तीर्थस्थानों की संख्या बहुत है, जिनमें से कुछ यहां दर्शा रहा हूँ।

कैलाश, चम्पापुर, पावापुर, गिरनार, शत्रुन्जय, सम्मेद शिखर, गजपन्था, तुंगी, पावागिरि, द्रोणागिरि, मेदगिरि, कुंथुगिरि, सिद्धवरकूट, वड़वानी, आबूगिरि, शंखेश्वर, गुणावा, राजगृही, कुण्डलपुर, मन्दारगिरि, पटना, वनारस, सिंहपुरी, चन्द्रपुरी, प्रयाग, फफोसा, कौशाम्बी, अयोध्या, खुस्वून्दू, सटमैंट, रत्नपुरी, कम्पिला, अहिक्षेत्र, हस्तिनापर, चौरासीमथुरा, सौरीपुर, ग्वालीपद, सोना-गिर, अजयगढ़, खजराहा, नैनगिरि, बीनाजीक्षेत्र सैरोनगांव, देवगढ़, चांदपुर, पपोराजी, अहारजी, चन्देरी, पचराई, थूवौनजी, अन्तरिक्ष पार्श्वनाथ कारंजा, मुक्तागिरि, मातकुलि, रामटेक, श्री महावीर जी चांदखेड़ी, मक्सी पार्श्वनाथ, विजौलिया पार्श्वनाथ, केशरियाजी, आबू पहाड़, अचलगढ़, तारंगा, पावागढ़, मांगीतुंगी, गजपन्था, एलोरा, कुंथलगिरि, कारकण्डू की गुफायें, बीजापुर, वादामी के गुफा मन्दिर, वैलगांव, हम्मचरद्मावती; वरांगकारगल, मूड़विद्री, वेणूर, वैलुर-हलेविड, श्रवणवेलगोला, खण्डगिरि, झाल-रापाटण, (१०८ मन्दिर हैं) लूणवसही, रणकपूर आदि।

भारतीय संस्कृति और गाय के प्रति जैनों की श्रद्धा

भारतीय संस्कृति में निःसन्देह गाय को मां के समानान्तर मान्यता दी गयी है। श्रद्धा, सम्मान, पूजा और त्याग की अधिकारिणी गौ माता के प्रति आदि काल से ही एक पवित्र सम्बन्ध हम अपने भीतर बाल्यकाल से ही अनुभव करने लगते हैं।

'बाल्यकाल से ही हमारे ऊपर गौ का उपकार या ऋण चालू हो जाता है। मां का दूध क्रमशः घटता जाता है और बच्चे की भूख क्रमशः बढ़ती जाती है। स्थिति यहां तक चली जाती है कि केवल माता के दूध से उसकी क्षुधा-निवृत्ति नहीं हो पाती। दूध उसके शरीर को पुष्ट करने वाला और शक्ति देने वाला होने से उसकी आवश्यकता तो बड़े होने पर भी बनी रहती है, पर बच्चे के लिए तो वही आरम्भ से अभ्यस्त आहार है तथा जहाँ तक दांतों से चबाने की शक्ति नहीं मिल जाती, वहां तक अन्न उसके स्वास्थ्य के अनुकूल नहीं होता। इसलिए जब माता के दूध से उसका पेट पूरा नहीं भरता तो गाय का दूध उस कमी की पूर्ति कर देता है। अतएव बाल्य जीवन से ही 'गौ' का स्थान 'माता' के समान ही उपकारी बन जाता है। गौ-मूत्र और गोबर—इन दोनों को हिन्दू धर्म शास्त्रों में पवित्र माना गया है। अपवित्र भूमि पर गोबर लीप देने से वह पवित्र बन जाती है। प्राचीन

काल में बड़े यत्न से गौ का पालन–पोषण, रक्षण किया गया है। तभी तो गौवंश की इतनी वृद्धि हुई कि दो-चार या दस-बीस ही नहीं चालीस, साठ और अस्सी हजार का गौ–कुल रखने वाले जैन श्रावकों का उल्लेख 'उपासक दशाँग' नामक सातवें अंग-सूत्र में पाया जाता है।[1]

सम्राट अकबर के समय गौ-हत्या बन्द कर दी गई थी। उनमें कई हिन्दू जैन-मुनि महात्माओं तथा विद्वानों का बड़ा योग रहा है।

गाय के गोबर से कन्डे (उपले) बनते हैं, जो रसोई बनाने के काम में लाये जाते हैं। अधिक उपज पैदा करने के लिये गोबर का खाद खेतों में डाला जाता है। गौ–मूत्र औषध के उपयोग में में भी आता है। गाय के बछड़े ही खेती करने के काम आते हैं। गाय के मर जाने पर भी उसकी हड्डी, सींग, बाल व चमड़ी काम आती है, गौवंश के ऋण से हम कभी उऋण नहीं हो सकते। जैनों में दूध के लिए बकरी के बजाय गाय आज भी पाली जाती है।

वर्तमान में देहली में जो गौ हत्या बन्द कराने का आन्दोलन चलाया गया था, इस विराट प्रदर्शन के संयोजक जैन मुनि श्री सुशील कुमार जी ही नियुक्त हुए थे। जैनियों का शक्तिशाली संगठन सबके साथ मिल कर कार्य कर रहा था।

श्री भगवान महावीर २५वीं शताब्दी के सन्दर्भ में २५०० गायों को कसाइयों की छुरी से बचा कर उनके पालने की समुचित व्यवस्था श्री आदर्श गौशाला टीकोली (गुड़गांव) हरियाणा राज्य में की जा रही है। श्री सुराणा जी जैन-हिन्दू ही हैं।

आदि कृषि शिक्षक भगवान आदिनाथ पुस्तिका में श्री विद्या

१–कल्याण वर्ष ४१ अंक ७ जुलाई १९६७–पृ–१०५९

नन्द जी मुनि लिखते हैं कि विदेशी मुद्रा अर्जित करने के लिए गौ हत्या आवश्यक प्रतीत होती है। सुभाषित के समान मधुर तथा साधु के समान निर्दोष गौ को मार कर गौ पालक गोपाल कृष्ण के राष्ट्रीय सहोदर और महावीर भगवान के अहिंसक देश के प्रतिनिधि व्यापारी किस अन्धपातक के अतल गड्डर में गिरे जा रहे हैं। आज अन्न निर्भर होने की इच्छा रखने वाला भारत कृषि के परम सहायक गौवंश पर आरा चलाये, यह समर्थन कौन पंडिताभिमानी अर्थशास्त्री करना चाहता है।

देश में जब भी मातृभूमि की स्वतन्त्रता और गौरक्षा का अवसर आया है तब प्रायः जैनियों ने स्वाधीनता के सच्चे पक्ष का समर्थन किया और उसके लिए अपने सर्वस्व तथा जीवन निधि की तनिक भी परवाह नहीं की।[1]

जैनों के उपासक दशांग सूत्र में भगवान महावीर के सद श्रावकों का वर्णन इस प्रकार किया गया है।

(१) आनन्द	— वाणिजग्राम	—	गायों की संख्या	४ गोकुल
(२) कामदेव	— चम्पानारी	—	"	६ गोकुल
(३) चूलणीहिता	— बनास	—	"	८ गोकुल
(४) सरादेव	— बनास	—	"	६ वर्ग
(५) चुल्लशतक	— आलम्पिकानारी		"	६ गोकुल
(६) कुंड कौलिक	—कम्पिलपुर	—	"	६ गोकुल
(७) सद्दाल पुत्र	— पोलासपुर		"	१ गोकुल
(८) महाशतक	— राजगृह	—	"	८ गोकुल
(९) नन्दिनीपता	श्रावस्ती	—	"	४ वर्ग
(१०) सालिहिपिया	श्रावस्ती	—	"	४ गोकुल

नोट :—दस हजार गायों का एक गोकुल होता है।

१—जैन शासन : श्री सुमेरुचन्द्र जी दिवाकर सिवनी—पृ० ३४०

यस्या दुग्धघृतादिना नरतनुः पोपुष्यते सर्वथा ।
वाणिज्यं कृषि कर्मभारवहनं यज्जातिमालम्बते ॥
सा रक्ष्या पशुजातिरुत्तमजनै कर्त्तव्य सेवाधिया ।
हिंसातो वलितोऽसिमार भरणात्क्रौर्याद् भृशंताऽनात् ॥

जिनके दूध और घी से सब प्रकार मनुष्य जाति के शरीर का पोषण होता है, जिन्हें गाड़ी वगैरा में जोत कर व्यवसायादि का काम काज लिया जाता है, जिनकी गर्दन पर जुआ रख कर खेती का तमाम काम लिया जाता है, जिनकी पीठ पर भार लादा जाता है, उत्तम पुरुषों को चाहिये कि कर्त्तव्य तथा सेवा–भाव से उन पशुओं को हिंसा, बलिदान अतिभार लादने और क्रूर मनुष्यों द्वारा निर्दयतापूर्वक मारने पीटने से बचाना चाहिये ।[1]

समस्त भारतवर्ष में गोपालन और गौशालाओं का महत्व दिखाई दे रहा है । वह श्रीकृष्ण की देन है । गुजरात–सौराष्ट्र और राजस्थान आदि में गौओं के साथ ही अन्य प्राणियों को भी रखा जाता है, उनका भी पालन पोषण किया जाता है जिसे 'आंजरापोल' कहते हैं, यह भगवान अरिष्टनेमि की देन है ।[2]

गांधी जी गौ रक्षा के सम्बन्ध में जैन और वैष्णवों को सम-दृष्टि से देखते हुए कहते हैं कि हिन्दुस्तान जैसे मुल्क में जहां जीव दया का धर्म पालने वाले असंख्य मनुष्य वसते हैं और जहां गाय को माता के समान मानने वाले करोड़ों धर्मात्मा हिन्दू रहते हैं, वहां गाय का यह बुरा हाल है ।

जैन लोग भी गाय को गऊ माता ही कहते हैं । दीवाली के

१–कर्त्तव्य कोमुदी : भारत भूपण शतावधानी पं० मुनि श्री रत्न चन्द्र जी महाराज (जैन द्वितीय खण्ड–पृ०२५२)

२–भगवान अरिष्टनेमि और कर्मयोगी श्रीकृष्ण–एक अनुशीलन–पृष्ठ २०

(३) कर्मवाद (४) क्रियावाद एवं आत्मा के अस्तित्व के लिए छः बातें अनिवार्य हैं। (१) आत्मा है। (२) पुनर्भव है (३) बंध है (४) बन्ध के हेतु हैं (५) मोक्ष हैं। (६) मोक्ष के हेतु है।[1]

आचार्य दत्तात्रेय गणेश कस्तूरे ने भी प्रतिपादित किया है कि वैदिक व जैन मत दोनों में कर्म, पुनर्जन्म तथा मोक्ष के सिद्धान्तों को स्वीकार करते हैं।[2]

मूलतः पुनर्जन्म पर भारतीय दर्शन के अन्तर्गत यहां के बड़े-बड़े दार्शनिकों, तत्व चिन्तकों, मनीषियों और तार्किकों ने बड़ी ही गम्भीरतापूर्वक मनन चिन्तन किया है। आस्तिक दर्शनों में पुनर्जन्म का सिद्धान्त निर्विवाद रूप में माना गया है। बौद्ध तथा जैन इसे डंके की चोट पर स्वीकार करते हैं। बौद्ध जातक में तो तथागत के पूर्व के हजारों जन्म की कथायें लिपिबद्ध हो चुकी हैं। न्यायदर्शन का तो यह एक प्रतिपाद्य सिद्धान्त रहा है। गीता जसी सर्वतन्त्र-सिद्धान्त एवं विश्व-सम्मान्य पुस्तक में भी पूर्व जन्म एवं पुनर्जन्म का उल्लेख है।[3]

भारत के आर्य पुनर्जन्म के सिद्धान्त को अनादिकाल से मानते चले आये हैं। आप किसी साधारण से साधारण अपठित भारतीय से पूछिये, वह इस सिद्धान्त पर अपना अटल विश्वास प्रगट करेगा, यहां तक कि जैन और बौद्ध सम्प्रदाय भी इस सिद्धान्त पर आस्था रखते हैं। वेद, उपनिषद्, शास्त्र, स्मृति, पुराण, इतिहास-सभी यह प्रतिपादित करते हैं कि आत्मा मृत्यु के पश्चात एक शरीर को छोड़ कर दूसरे शरीर में इसी प्रकार

१-आचार्य तुलसी तीर्थंकर और सिद्ध-वही अंक पृष्ठ ५५

२-माध्यमिक सम्पूर्ण इतिहास-पृष्ठ ४० भाग १

३-श्री जनार्दन मिश्र 'पंकज-परलोक और पुनर्जन्मांक-कल्याण -पृष्ठ १६४-१६६

जाता है, जिस प्रकार हम पुराने वस्त्रों को उतार कर नये को धारण करते हैं।[1]

बौद्ध दर्शन के समान जैन दर्शन भी कर्म फल को मानता है और शुभ कर्मों से स्वर्ग तथा अशुभ कर्मों से नरक की प्राप्ति के सिद्धान्त में विश्वास करता है।[2]

वस्तुतः कर्म को समझने के लिए कर्मवाद को समझने की जरूरत है। 'वाद' का अर्थ सिद्धान्त है। जो वाद कर्मों की उत्पत्ति, स्थिति और उनकी रस देने आदि विविध विशेषताओं का वैज्ञानिक विवेचन करता है, वह कर्मवाद है। जैन शास्त्रों में कर्मवाद का बड़ा गहन विवेचन है।[3]

आत्मा, पुनर्जन्म और कर्म सिद्धान्त–ये तीनों परस्पर में अनुस्यूत है। आत्मा का स्वतन्त्र अस्तित्व मानने पर शेष दोनों को भी मानना पड़ता है।[4] जैन मत में पुनर्जन्म के प्रति आस्था प्रदर्शित की गई है। जैन आगम ग्रन्थों तथा महापुराणादि चरित गाथाओं में बारम्बार पुनर्जन्म के उल्लेख हुए हैं।[5] जैन मतानुसार जीव इस संसार में कर्म से प्रेरित होकर भ्रमण करता है।

१–श्री वल्लभ दास जी बिन्नानी : पुनर्जन्म सिद्धान्त की विश्वव्यापी मान्यता कल्याण अंक –पृष्ठ ३०१

२–पं० गौरी शंकर द्विवेदी : दर्शन और पर लोकवाद–वही अंक पृष्ठ ३१२

३–पं० चैनसुखदास न्यातीर्थ : जैन धर्म का कर्मवाद–वही अंक पृष्ठ ४६०

४–कैलाशचन्द्र शास्त्री : जैन धर्म में आत्मा पुनर्जन्म और कर्म सिद्धान्त वही अंक पृष्ठ ४६३

५–डा० राज नारायण पाण्डे : जन मत में पुनर्जन्म तथा कर्म सिद्धान्त–वही अंक पृष्ठ ४६६

उपनिषदों में ही सर्वप्रथम कर्मफलवाद तथा पुनर्जन्म के सिद्धान्तों का प्रतिपादन हुआ। जैन धर्म में जहां कि पुनर्जन्म की बात पर विश्वास किया जाता है, जन्म-मरण के बन्धन से छुटकारा पाने का एक ही उपाय है कि पूर्व जन्मों के कर्मों से छुटकारा पाना तथा नये अच्छे कर्म करना। आवागमन के बन्धन से मुक्त होने के लिए महावीर स्वामी ने हर जैन धर्मावलम्बी को 'त्रिरत्नों' के पालन की शिक्षा दी।[1]

भारत की आध्यात्मिक परम्पराओं ने जैन धर्म और संस्कृति का महत्वपूर्ण स्थान है। कर्म, पुनर्जन्म, मोक्ष, सृष्टि, रूप आदि के सम्बन्ध में जैन दर्शन के अपने विचार हैं। 'अनेकान्तवाद' और 'स्यादवाद' के सिद्धान्त उसकी मौलिकता के प्रवलतर प्रतीक हैं। सांख्ययोग की भाँति जैन दर्शन सृष्टिकर्त्ता ईश्वर को स्वीकार नहीं करता, अद्वैतवेदान्त की तरह वह आत्मा के स्वरूप लाभ को ही मोक्ष मानता है। वैशेषिक के समान वह परमाणुवादी है। उसके ज्ञान सम्बन्धी कतिपय विचार वर्तमान परामनोविज्ञान का पूर्वाभास देते हैं।[2]

विभिन्न विद्वानों के इन उपरोक्त विवेचनों से स्पष्ट है कि जैन व वैष्णव मान्यताओं में कोई मूलभूत अन्तर नहीं है तथा एक ही भारतीय संस्कृति का अविच्छिन्न अंग होने के कारण वैष्णव और जैन दोनों ही हिन्दू (भौगोलिक नहीं वरन् सम्वोधन के परम्परागत अर्थों में) कहलाने के समान योग्य हैं।

१—पी० एस० त्रिपाठी भारतीय इतिहास का परिचय
२—डा० देवराज, एम० ए० डी० लिट्०—चिन्तन की मनोभूमि
—अमर मुनि के 'दो शब्द' से

सामाजिक परिप्रेक्ष्य
श्रौर
जैन तथा हिन्दू धर्म का
मूल्यांकन

जिज्ञासा

- जैनियों की वेशभूषा···अलंकरण···?
  —भारतीय···समस्त जातियों व समाज में सम्मान

- आपका भाषा विकास···?
  —मूल भारतीय भाषा,
  —संस्कृत-पालि-प्राकृत-अपभ्रंश······हिन्दी

- हिन्दू विधि से आपका सम्बन्ध···?
  —अभिन्न···हिन्दू विधि में 'हिन्दू' के अंतर्गत जैन भी

- उपनियम संस्कार का जैन-धर्म में स्वरूप और महत्व ?
  —वैष्णवों के समान ही

- आपमें वैवाहिक सम्बन्धों का आधार···?
  —समन्वयात्मक, जैन-वैष्णवों में परस्पर विवाह सम्बन्ध मान्य,

- आपके त्योहार और पर्व···?
  —वैष्णवों के समान एक ही समय···दीपावली, मकर संक्रांति, होली, रक्षाबन्धन, नागपंचमी, विजया-दशमी आदि का मनाना

- आपमें मृत्यु संस्कार···?
  —अग्निदाह (चिता) की मान्यता, मृतक के फूल का गंगा में विसर्जन, मृत्यु-भोज, मृत्यु समय भगवान के नामोच्चारण का समान महत्व ।

जैनों में हिन्दू वेश-भूषा, भाषा और साहित्य

वेश-भूषा से आदमी का धर्म, जाति, देश और संस्कृति सब कुछ स्पष्ट हो जाता है।

जैनों की वेश-भूषा भारतीय है। पुरुषों द्वारा पहनी हुई धोती, कुर्त्ता, जाकिट, सलूका, बंडी, दुसाला व दुपट्टा साफा और पगड़ी आदि, जैन नारियों द्वारा पहने हुए लहंगा (घाघरा) ओडनी, चोली(कांचली), साड़ियें, ये सब भारतीय प्रत्येक समाज व जाति का पहनावा रहा है जिसे हिन्दू पहनावा ही कहा जाता है।

जैनों में अपनी प्रान्तीय भाषा के साथ-साथ हिन्दी जो हमारी मातृ-भाषा है, पूर्ण रूपेण उसको व्यौहार में लाते हैं और उससे प्यार करते हैं। वेप-भूषा व भाषा से ही संस्कृति का सम्बन्ध माना जाता है। जैनों के मूल धार्मिक ग्रन्थ संस्कृत व प्राकृतिक भाया में ही लिखे गए हैं जो भारतीय मूल भापा ही कहलातो है जिनका अर्थ-भावार्थ हिन्दी भाषा द्वारा ही लिखा गया है।

निष्कर्ष यह निकलता है कि वेष-भूषा, भाषा और साहित्य से ही देश का धर्म, संस्कृति और जातीय आदर्श जुड़े हुये हैं।

इनके द्वारा ही भावात्मक एकता बनी हुई है।

जैनों में भी वही आभूषण और उन्हीं अंगों में पहने जाते हैं जो समस्त भारतीय जाति व समाज के अंग हैं; जैसे सिर में वेदा, वौर (वीज) टीका, शीश फूल, क्लिप, गले में ठुस्सी, सत-फूली, हार (नेकलिस), जंजीर, कन्ठा, कन्ठी, गुन्ज, कोप, हाथों में हथफूल, अंगूठी, चूड़ियां, ककना (गोखरू), पौंची, चूड़ा, पटेला बगड़ी, बाजूबन्द, भुजबन्द, कमर में क़नकती, कन्दौरा, पैरों में बिकूड़ी (बिछिया), छल्ला टनका, नेवरी, आवला, कड़ी, तोड़ा, झांजें, लच्छे, पायल, पायजेब आदि। ये भले ही चांदी व सोने के बने हों, भिन्न प्रकार के भी अपनी सूची के अनुसार बना कर पहने जाते हों, लेकिन इनसे भारतीयता का दिग्दर्शन होता है। ये सब हिन्दुत्व की निशानी हैं। इन सबको पहनने वाले हिन्दू हैं, चाहे धर्म भले ही भिन्न-भिन्न हों।

हिन्दू-विधि

हिन्दू कौन व्यक्ति हैं और कौन नहीं, किन व्यक्तियों पर हिन्दू विधि की व्यवस्थायें लागू होती हैं, यह विचारणीय है। वास्तव में हिन्दू वे सभी व्यक्ति हैं जो हिन्दू के अनुयायी हैं या जिन्होंने हिन्दू धर्म स्वीकार कर लिया है।

पेज २५ पर लिखा है कि हिन्दू धर्म के अनुयायी चार वर्णों में विभाजित किये गये हैं। यह चार वर्ण ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र हैं।

पेज २६ हिन्दुओं की वैवाहिक प्रथा के सम्बन्धित समय-समय पर अधिनियम पारित किए गए हैं, सन् १९४९ में हिन्दू विवाह मान्यता अधिनियम पास किया गया था जिसमें हिन्दू, सिक्ख तथा जैनियों के बीच तथा इनकी उपजातियों के बीच परस्पर विवाहों को मान्यता प्रदान की गयी थी।

पेज ३० हिन्दू विवाह अधिनियम १९५५ की धारा २९ की उपधारा (४) निम्नलिखित व्यवस्था है। हिन्दू विवाह अधिनियम में विवाह के अतिरिक्त, विवाह विच्छेद तथा विवाह सम्बन्धी उपराधों के विषय में भी व्यवस्थायें की गई हैं। इस अधिनियम के अनुसार निम्नलिखित व्यक्तियों की गणना हिन्दुओं में की जाती हैं (१) बौद्ध, जैन तथा सिक्ख (२) कोई भी वैध या अवैध बच्चा जिसके माता-पिता दोनों हिन्दू हों या बौद्ध, जैन या सिक्ख हों। (३) कोई भी वैध या अवैध बच्चा जिसके माता-

पिता दोनों में से एक भी हिन्दू बौद्ध, सिक्ख या जैन रहा हो और जिसका पालन-पोषण उसी जाति वर्ग में या परिवार में उस के सदस्य के रूप में किया गया हो। (४) कोई भी व्यक्ति जिस ने हिन्दू धर्म स्वीकार किया है या कोई भी ऐसा व्यक्ति जो पहले हिन्दू धर्म छोड़ चुका था, किन्तु जिसने पुनः हिन्दू, जैन या सिक्ख धर्म स्वीकार कर लिया हो।

जैन समाज के अन्दर हिन्दू विवाह अधिनियम की धाराओं तथा उपधाराओं के अन्तर्गत ही विवाह सम्बन्धी व्यवस्थायें पूर्ण-रूप से निभाई जाती हैं।

हिन्दू विधि में विवाह तथा हिन्दू विवाह अधिनियम की मान्यता के आधार पर ऐसा कहने में कोई संकोच नहीं होना चाहिये कि जैन हिन्दू हैं।

हिन्दू-विधि पेज ६६ (अ) धर्म परिवर्तन के सम्बन्ध में लिखा गया है कि हिन्दू धर्म त्याग कर ऐसा धर्म स्वीकार किया जाय जिससे कि वह व्यक्ति पूर्णतया अहिन्दू हो जाये। इसका तात्पर्य यह है कि हिन्दू धर्म छोड़ कर इस्लाम, क्रिश्चियन, पारसी या जिन धर्म स्वीकार किया गया होना चाहिये। हिन्दू विवाह अधि-नियम के अनुसार बौद्ध. जैन तथा सिक्खों को हिन्दुओं के समकक्ष रखा गया है।[1]

हिन्दू विधि एक व्यक्तिगत विधि है। व्यक्तिगत विधि से तात्पर्य उस विधि से है जो किसी व्यक्ति पर उसके धर्म अथवा सम्प्रदाय विशेष के सदस्य होने के नाते लागू होती है। इस प्रकार हिन्दू विधि से तात्पर्य उस विधि से है जो किसी व्यक्ति पर उसके हिन्दू होने के नाते लागू होती है। दूसरे शब्दों में वह विधि अहिन्दुओं पर लागू नहीं होती है। इसलिए हिन्दू विधि के

१—हिन्दू विधि ? श्रीमती उषा सक्सैना : पृष्ठ ७

अध्ययन में सर्वप्रथम जिस बात के ज्ञान की आवश्यकता है वह यह है कि वह कौन व्यक्ति है जिस पर यह विधि लागू होती है अर्थात, हिन्दू कौन है ? दूसरे उसकी व्यक्तिगत विधि का क्षेत्र क्या है ?

हिन्दू शब्द विदेशियों का दिया हुआ है और इसकी उत्पत्ति सिन्धु शब्द से हुई है। हिन्दू शब्द से तात्पर्य नदी के पूर्व के रहने वाले लोगों से था। इस प्रकार यह शब्द एक राष्ट्रद्योदक शब्द था, किसी जाति अथवा सम्प्रदाय का बोधक नहीं था।

वास्तव में हिन्दू कहे जाने वाले लोगों में जो एकता है वह एक सांस्कृतिक एकता है। इसलिए अनेक विद्वानों ने 'हिन्दू' शब्द को धर्म का वाचक न मान कर संस्कृति का वाचक माना है।

विधि को हिन्दू धर्मावलम्बियों की विधि समझना भ्रामक है। वस्तुतः हिन्दू विधि में हिन्दू शब्द से तात्पर्य उन व्यक्तियों से है जो या तो आदितः भारतीय हैं अथवा ऐसे धर्म या मत के अनुयायी हैं जिसकी उत्पत्ति भारत की है।[२]

इस प्रकार हिन्दू विधि के उपरोक्त संदर्भ में भी यह कहना असंगत न होगा कि मूलतः वैष्णव और जैन दोनों ही सम्प्रदाय आज भी सांस्कृतिक तथा अन्य स्तरों पर एक हैं और उनमें विभेद पैदा करने के सारे तर्क बहुत हद तक सायास हैं, सहज नहीं।

२–हिन्दू विधि : प्रो० विजय नारायण मण्ण त्रिपाठी–विधि विभाग प्रयाग विश्व विद्यालय–पृ० १

जैन और यज्ञोपवीत

उपनयन या यज्ञोपवीत धारण सोलह संस्कारों में से एक संस्कार है। इस शब्द का अर्थ समीप लेना है। उप अर्थात समीप और नयन का अर्थ लेना है। आचार्य या गुरू के निकट वेद अध्ययन के लिये लड़के को लेना अथवा ब्रह्मचर्य आश्रम में प्रवेश करना ही उपनयन है। इस संस्कार के चिन्ह स्वरूप लड़के की कमर में मूंज की डोरी बांधने को मोन्जी बन्धन और गले में सूत के तीन धागे डालने को उपवीत, यज्ञोपवीत या जनेऊ कहते हैं—यज्ञेन संस्कृतं उपवीतम्। यह एक शुद्ध वैदिक क्रिया या आचार है और अब भी वर्णाश्रम धर्म के पालन करने वालों में प्रचलित है। आदि पुराण में श्रावकों को भी यज्ञोपवीत धारण करने की आज्ञा दी गई है और तदनुसार दक्षिण तथा कर्नाटक के जैन गृहस्थों में जनेऊ पहना भी जाता है। इधर कुछ समय से उनकी देखा-देखी उत्तर भारत के जैन भी जनेऊ धारण करने लगे हैं।[1]

जनेऊ धारण कर लेने के उपरान्त जो क्रियायें अपनानी पड़ती हैं, उसमें स्वयं की कमजोरी के कारण कुछ जैनियों ने उसका त्याग कर दिया है और जो उसकी साधना में समर्थ हैं

१—यज्ञोपवीत और जैन धर्म : जन साहित्य और इतिहास—नाथूराम जी प्रेमी—पृ० ५०

वह आज भी यज्ञोपवीत धारण करते हैं। यहां मेरा आशय सिर्फ यह स्पष्ट करना है कि वैष्णव एवं जैनियों का यज्ञोपवीत धारण परस्पर समन्वय सूचक तथा हिन्दू संस्कृति का प्रतीक है। इस प्रकार जैनियों द्वारा यज्ञोपवीत की मान्यता यह प्रमाणित करती है कि जैन भी हिन्दू ही हैं।

सौमदेव ने अपने यशस्तिलक में लिखा है—

यत्र सम्यक्त्वहानिर्न यत्र न व्रतदूषणम्।
सर्वमेव हि जैनानां प्रमाणं लौकिको विधिः।

अर्थात वे सभी लौकिक विधियां या क्रियायें जैनियों के लिये प्रमाण हैं, जिनमें सम्यक्त्व की हानि न होती हो और व्रतों में कोई दोष न लगता हो, इस सूत्र के अनुसार ही अग्नि पूजा और यज्ञोपवीत की विधियों को जैन धर्म में स्थान मिल सकता है।

जनेऊ से अध्यात्मिक, मानसिक एवं शारीरिक स्वास्थय के अनेक लाभ प्राप्त होते हैं, जो विज्ञान सम्मत हैं।

यज्ञोपवीत चव्व पर ९६ बार लपेटा जाता है। फिर इसे तिगुना करके ऊपर बांई तरफ लपेटना पड़ता है। इससे इसमें ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य इन तीनों वर्णों का अधिकार बताया जाता है, फिर इस तीन लड़ी वाले सूत्र को तिगुना करके पुनः दाहिने से नीचे लपेटा जाता है जो ब्रह्मचर्य, गृहस्थ एवं वानप्रस्थ इन तीन आश्रमों की प्रयोगशीलता का प्रतीक है।

श्री मूल शंकर देसाई के अनुसार यज्ञोपवीत पहनने का अधिकार उसे ही है जिसका खान-पान शुद्ध हो, आगम के अनुकूल हो और जो अभक्ष का त्याग करने वाला हो, जो रात में चार प्रकार के आहारों से मुक्त, सप्त व्यसन का सम्पूर्ण रीति से त्याग करने वाला हो। जैन धर्म में भी यज्ञोपवीत के पीछे यही

मान्यता रही है।

यज्ञोपवीत में नौ तन्तुओं का विवेचन निम्न प्रकार किया गया है।

(१) ऊंकार–एकत्व का प्रकाश, ब्रह्मज्ञान।
(२) अग्नि–तेज, प्रकाश, पापदाह।
(३) अनन्त–अपार धैर्य, अचज्वलता, स्थिरता।
(४) चन्द्रमा–शीतलता, सुधावर्षा, सर्वप्रियता।
(५) पितृगण–स्नेहशीलता, आशीर्वाददान।
(६) प्रजापति–प्रजापालन, प्रजास्नेह।
(७) वायु–वलशीलता, धारणशक्ति।
(८) सूर्य–स्वास्थ्य-प्रदान, मलशोषण, अन्धकारनाश, प्रकाश।
(९) सर्वदेवता–देवोसम्पत्ति, सात्विक जीवन।[१]

काश्मीर हो या कन्याकुमारी, द्वारका हो या जगन्नाथपुरी, प्रत्येक स्थान पर ऐसे व्यक्ति मिल जायेंगे, जो निर्धन हों या धनवाद, समान रूप से अपने शरीर पर जनेऊ धारण किये होंगे। ये धागे भारत की वास्तविक एकता के प्रतीक हैं। विशेपता यह है कि इनसे केवल भौतिक अथवा वाह्य एकता ही नहीं प्रकट होती है, अपितु ठोस और आन्तरिक एकता का भी आभास होता है। क्योंकि जनेऊधारी व्यक्तियों की मनोवृत्ति, संस्कृति एवं जीवन वृत्ति में प्रायः एकरूपता होती है। अति प्राचीन काल में कर्मनिष्ठ तथा जागरूक नागरिक की वय पर पहुंचने से वहुत पूर्व कर्त्तव्य परायणता के लिए सम्मान स्वरूप से सूत्र प्रदान किये जाते थे।

महापुराण में यज्ञोपवीत के लिए ब्रह्मसूत्र, रत्नत्रय सूत्र और यज्ञोपवीत आदि कई नामों का उल्लेख मिलता है। इसकी

१–कल्याण : श्री घनश्याम दास जी जालान।

व्याख्या करते हुए आचार्य जिनसैन ने लिखा है कि सर्वज्ञ देव की आज्ञा को प्रधान मानने वाला वह द्विज, जो मन्त्रपूर्वक सूत्र धारण करता है, उसके व्रतों का चिन्ह है। तीन रत्न का जो यज्ञोपवीत है वह हृदय में उत्पन्न हुए सम्यक दर्शन, सम्यक-ज्ञान और सम्यक् चरित्र तथा गुणरूप जो श्रावक का सूत्र है वह उसका भावसूत्र है।

भरत महाराज के अनुसार उपनीति संस्कार के नियम का पालन करते हुए जिसने अर्हितन्त देव की पूजा की है ऐसे उस बालक को व्रत देकर उसका मौंजी वन्धन करना चाहिए जो चोटी रखाये हुए है, जिसके तन पर सफेद धोती और सफेद दुपट्टा है. जो वेश और विकारों से रहित है तथा जो व्रतों के चिन्ह स्वरूप यज्ञोपवीत सूत्र को धारण कर रहा है। उसे ही ब्रह्मचर्य मानना चाहियें।

'कितने लर का यज्ञोपवीत होता है, इसके स्पष्टीकरण के सन्दर्भ में व्रतचर्या संस्कार का निरूपण करते हुए उन्होंने स्पष्ट किया है कि सात लर का गुठा हुआ यज्ञोपवीत होना चाहिये।

दीक्षान्वय क्रियाओं में भी एक उपनीति क्रिया कही गयी है और उसमें यज्ञोपवीत धारण करने का विधान है। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि व्यक्ति जैन धर्म में चाहे नव दीक्षित हो, चाहे कुल परम्परा से जैनी हो. आचार्य जिनसैन के अभिप्राय अनुसार यज्ञोपवीत का धारण करना द्विजमात्र के लिए आवश्यक है। जिस गृहस्थ ने जितनी प्रतिमायें स्वीकार की हों उसे उतनी लर का यज्ञोपवीत धारण करना चाहिये।'

श्री रामचन्द्र शर्मा वीर ने भी जैन मतावलम्बियों द्वारा शिखा और सूत्र धारण करने की वात को स्वीकार किया है।[२]

१-वर्ण जाति और धर्म-पं० फूलचन्द सिद्धान्तशास्त्री -पृ० २०१
२-विजय पताका -श्री रामचन्द्र शर्मा वीर -पृ० १८१

विवाह सम्बन्ध

जैनों व सनातन धर्मियों के परस्पर विवाह की पुष्टि के सम्बन्ध में 'कल्याण' के हिन्दू संस्कृति अंक पेज २७४ पर 'हिन्दू-संस्कृति और दर्शन-शास्त्र' शीर्षक लेख में सभी दर्शनों की व्याख्या की गई है, उसमें पेज २८० पर अर्हित (जैन)–दर्शन लेख के अन्त में लिखा गया है कि जैन-धर्म का साहित्य एवं दर्शन अत्यन्त विस्तृत है। इतिहासज्ञ इस धर्म को बौद्ध धर्म से प्राचीन मानते हैं और शास्त्र के अनुसार भी इसकी परम्परा भगवान ऋषभ से है।

जैन धर्म सनातन धर्म से इतना कम अन्तर रखता है कि वैवाहिक सम्बन्धादि भी परस्पर होते रहे हैं और आज भी हो रहे हैं।

साप्ताहिक दिनमान ३ जनवरी सन् १९७१ के नव वर्षांक में पृष्ठ ५ पर रामेश्वर महतो (संथाला परगना) लिखते हैं—इस संदर्भ में हिन्दू मैरेज ऐक्ट १९५५ उल्लेखनीय है, हिन्दू, सिख, बौद्ध और जैन धर्मावलम्बियों के साथ विवाह का उपबन्ध इसमें है।

इसके पूर्व बम्बई में दो अधिनियम पारित हुए :–(१) हिन्दू मैरिज डिजेबिलिटीज रिमूवल ऐक्ट (१९४६) जिसमें सगोत्र, सम्प्रवर और अन्तः उप-जातीय विवाहों को वैधता प्रदान की गई थी और (२) दी हिन्दू मैरिजेज वैलिडिटी ऐक्ट १९४९) जिसमें

हिन्दुओं, जैनों तथा सिक्खों तथा उनकी उपजातियों में होने वाले विवाहों को वैधता प्रदान की गई थी।

हिन्दू मैरिज ऐक्ट में दोनों विशेषतायें थीं—शास्त्री मान्यताओं का अनुमोदन भी तथा जातीय स्थानीय परम्पराओं की मान्यता भी। इसलिए यह एक व्यापक अधिनियम बन गया।

इसके अतिरिक्त जहां तक विवाह के अन्तर्निहित कार्यविधि का प्रश्न है, जन और वैष्णव दोनों की विवाह पद्धति समान है, दोनों ही सम्प्रदायों में न तो एक गोत्र में विवाह होते हैं और न माता या पिता के मूल परिवारों में परस्पर विवाह सम्बन्ध को स्वीकृति दी जाती है। इसके अतिरिक्त बहु विवाह के सन्दर्भ में भी समान निषेध दोनों ही जगह मान्य है। बहिविवाह जिसके अन्तर्गत सपिण्ड और सगोत्र विवाह नहीं हो सकते, जैन और वैष्णव दोनों ही इस प्रतिबन्ध का पालन करते हैं। अन्तर्विवाह अर्थात् समाज में अपने वर्ग जाति धर्म तथा प्रजात के अन्दर ही विवाह करना दोनों ही सम्प्रदायों में समान प्रचलित है। यहां धर्म का आशय हिन्दू और मुसलमान जैसे पूर्ण भिन्न धर्मों से है क्योंकि जैन और सनातन धर्म में पहले भी विवाह सम्बन्ध होते रहे हैं और आज भी हो रहे हैं। जैन और सनातन या वैष्णव समाज में अनुलोम तथा प्रतिलोम के वैवाहिक नियमों का भी पूरी तरह समान पालन किया जाता है।

त्यौहार और पर्व

जैन समाज द्वारा मनाये जाने वाले वे त्यौहार जो काफी प्राचीन-काल से भारतवर्ष में चले आ रहे हैं आज भी वैष्णव के समानान्तर दिखाई पड़ते हैं। वैष्णव के समान जैनियों में भी ये त्यौहार उसी सद्‌भावना, श्रद्धा और एकत्व के साथ एक ही समय पर, एक ही तरीके से मनाये जाते हैं।

दीपावली:—कार्तिक बदी अमावस्या को दीपावली के पावन पर्व पर रात्रि के समय साफ-सुथरे मकान में जैन और वैष्णव दोनों ही लक्ष्मी पूजन के साथ पूरे उल्लास और उत्साह पूर्वक दीप जलाते हैं, एक-दूसरे के यहां लक्ष्मी पूजन का आमन्त्रण भेजते हैं और प्रसाद वितरण करते हैं। अमावस्या के अगले दिन प्रातःकाल दोनों में ही गोवर्धन पूजा होती है। द्वितीया के दिन दोनों ही पक्ष समान रूप से भाई दौज का त्यौहार मनाते हैं, जिसमें बहिन भाई को तिलक लगा कर उसका मुंह मीठा करती है और भाई बहिन के पैर पड़ कर उससे आशीष एवं शुभ कामनायें ग्रहण करता है। दीपावली की रात दीप और ज्योति तथा हर्ष की प्रतीक पटाकों की ऐसी रात है जहां जैन और वैष्णव किसी भी पृष्ठ भूमि पर दूर-दूर तक अलग नहीं दिखाई पड़ती।

मकरसक्रान्ति:—यह पर्व भी हिन्दू और जैन परिवारों में समान उल्लास और श्रद्धा के साथ मनाया जाता है। चौदह

जनवरी को पड़ने वाले इस पर्व पर हिन्दू व जैन निश्चित मुहूर्त पर पिसे हुए तिल को शरीर पर मल कर स्नान करते हैं। घरों में तिल व फूली के लड्डू बनाये जाते हैं, दाल और चावल की खिचड़ी इस मौके पर खाई जाती है तथा इन सब का वितरण गरीबों में भी किया जाता है।

रक्षा बन्धन:—सावन शुदी पन्द्रह को यह त्यौहार भी दोनों सम्प्रदाय के लोग विशेष उत्साह के साथ मनाते हैं। सभी नए और स्वच्छ कपड़े धारण कर इसमें हिस्सा लेते हैं। बहिन और भाई के पवित्रपूर्ण तथा संस्कारगत दायित्व का पर्व रक्षा-बन्धन समस्त हिन्दू संस्कृति का एक गरिमामय प्रतीक है। इस दिन बहिन अपने भाई को पवित्र प्रेम से जुड़े हुए राखी के डोरे उस की कलाई में बांधती है और भाई जीवन पर्यन्त उसकी रक्षा का वचन देता है। इस त्यौहार पर वैष्णव व जैन सभी परिवारों की लड़कियां पिता के घर बुला ली जाती हैं, इसके अतिरिक्त प्रायः ब्राह्मण पूरे दिन दोनों सम्प्रदाय वालों को राखी बांधते हैं और उनके प्रति अपने आशीष प्रगट करते हैं।

गणगौर:—यह सौभाग्यवती नारियों का व्रत है। राजस्थान में तथा अन्यत्र गणगौर की झांकी बड़ी सजधज व गाजे-बाजे के साथ निकाली जाती है, जिसमें वैष्णव व जैन सभी समान रूप से सम्मिलित होते हैं। यह पर्व चैत्र शुक्ल तृतीया को मनाया जाता है।

गुरू पूर्णिमा:—आषाढ़ शुक्ल पूर्णिमा को मनाया जाने वाला यह त्यौहार मूलतः गुरू अथवा आचार्य की पूजा से सम्बद्ध है जिसका समान प्रचलन आज भी जैन और वैष्णवों में श्रद्धा के साथ एक ही धरातल पर देखा जा सकता है।

नागपंचमी:—नागों की पूजा प्राचीन काल से ही हिन्दू संस्कृति

का एक अंग रही है जिसके अन्तर्गत श्रावण शुक्ला पंचमी को दीवार पर नागों के चित्र बना कर, उनकी पूजा की जाती है तथा उन्हें विभिन्न स्थानों पर प्रतीक के रूप में दूध पिलाया जाता है। यह पर्व भी हिन्दू, जैन और वैष्णव समान रूप से मनाते हैं।

शीतला सप्तमी:—श्रावण शुक्ल सप्तमी को शीतला मां की पूजा आज भी जैन और वष्णवों में प्रचलित है, जिसमें तीन दिन तक ठन्डा भोजन किया जाता है। चेचक से सुरक्षा पाने के लिए उस दिन मातायें शीतला माता को जल, दूब आदि से पूजन करती हैं।

कजलियां:—यह त्यौहार देश के कई हिस्सों में श्रावण पूर्णिमा को मनाया जाता है, जिसके अन्तर्गत परस्पर जैन और वैष्णव दोनों ही सम्प्रदायों भे आपस में कजलियों का आदान-प्रदान कर वर्ष भर की होने वाली गल्तियों की क्षमा मांगी जाती है। इसे भुजरिया भी कहते हैं।

गौ पूजन:—गाय भी हिन्दू संस्कृति में आदि से ही मां की तरह पूज्य मानी गयी है। आज भी कार्तिक कृष्ण द्वादशी को गौ माता का पूजन जैन और वैष्णव में समान रूप से उसी श्रद्धा के साथ किया जाता है।

धन तेरस:—कार्तिक कृष्ण त्रयोदशी को दीपक जला कर यह पर्व दोनों ही सम्प्रदायों में मनाया जाता है तथा उस दिन वर्तन भी खरीदने का एक जैसा प्रचलन है।

होली:—फाल्गुन शुक्ल पूर्णिमा को होलिका दहन के पर्व पर जैन और वैष्णव दोनों ही सम्प्रदाय के लोगों को इसमें भाग लेते देखा जा सकता है। जैनों के घरों से गोवर की मलरियां डोरी में पिरो कर होलिका पर चढ़ाई जाती है। होलिका की अग्नि सभी लोग अपने घर से लाते हैं तथा अगले दिन स्नेह और पारस्परिक प्रेम के प्रतीक रंगों का त्यौहार शुरू हो जाता है जो

बड़े उल्लास के साथ पंचमी तक मनाया जाता है।

विजय दशमी:—अशुभ की पराजय और शुभ की विजय के प्रतीक आश्विन शुक्ल दशमी को मनाये जाने वाला ये पर्व जैन और वैष्णव में उसी व्यापक विश्वास तथा श्रद्धा के साथ मनाया जाता है। इस दिन नीलकण्ठ का दर्शन आवश्यक एवं शुभ माना जाता है। यह राष्ट्रीय त्यौहार के रूप में मनाया जाता है।

अक्षय तृतीया—वैशाख शुक्ल तृतीया को पड़ने वाले इस पर्व का महात्म जहां जैन धर्म के अनेक ग्रन्थों में वर्णित है वहीं वदिक धर्म के पुराणों में भी इसे मान्यता दी गयी है। जैन धर्म के शास्त्रों में इससे लम्बा तप अन्य कोई नहीं माना गया है। इस तप को वर्पी तप भी कहा जाता है और उसका पूरक दिन अक्षय तृतीया ही है। भगवान ऋषभदेव ने एक वर्ष के बाद आज के ही दिन इक्षुरस से पारणा किया था।

गोगा नवमी:—कार्तिक शुक्ल नवमी को मिट्टी के घोड़े पर बैठी हुई मूर्ति बना कर दोनों ही सम्प्रदायों में गोगा जी का पजन किया जाता है।

——इसके अतिरिक्त जैन बौद्ध एवं वैदिक ग्रन्थों के अनुशीलन से यह स्पष्ट हो जाता है कि उस समय में पर्व और त्यौहार जीवन के आवश्यक अंग थे। शायद ही कोई ऐसा दिन हो जब कि समाज में पर्व, त्यौहार व उत्सव का आयोजन न रहा हो। इतना ही नहीं वल्कि एक-एक दिन और तिथि में दस-दस तथा उससे भी अधिक पर्वों का सिलसिला चलता रहता था। सामाजिक जीवन में बच्चों के पर्व अलग युवकों तथा औरतों के पर्व अलग और वृद्धों के पर्व अलग हुआ करते थे जिसके कारण भारत का जन-जीवन बहुत ही उल्लसित और नित्य प्रति आनंदित रहा करता था।[1]

१—जीवन दर्शन : अमर मुनि —पृ २४२

जैन और वैष्णव : मृत्यु संस्कार

मृत्यु संस्कार का भी समस्त भारतीय संस्कृति में अपना एक महत्वपूर्ण स्थान है, जिस प्रकार व्यक्ति और उसकी आत्मा की शान्ति के सम्बन्ध में कई परिकल्पनायें जुड़ी हैं साथ ही इस संस्कार पद्धति के कुछ अपने विशिष्ट वैज्ञानिक कारण भी हैं जो आज भी जैन और वैष्णव में एक समान देखे जा सकते हैं।

समस्त जैनियों का वो चाहे दिगम्बर हों या श्वेताम्बर, हिन्दू प्रथा के अनुसार उनके शवों का अग्नि-संस्कार ही किया जाता है। शव के साथ चलने वाला जन-समूह राम नाम सत्य है व अरिहंत नाम सत्य है, का मिल कर उच्चारण करने में कोई भेदभाव नहीं समझा जाता। मखाने व पैसे शव के ऊपर से फेंके जाते, मरघट पहुंचने के पहले भूमि स्पर्श कराया जाता है।

शव हिन्दू का हो या जैन का वहां कुछ पैसे रख दिये जाते हैं, बाद में शव उठाने वाले पीछे के आगे व आगे के पीछे हो जाया करते हैं, चिता पर हिन्दू पद्धति के माफिक ही दिशा) रखी जाती है, उस पर घी, जवा, तिल्ली मिश्रण कर डाला जाता है. चन्दन भी रखा जाता है, अग्नि संस्कार के बाद ही मुख्य कुटुम्बी ही चारों तरफ घूम कर चिता में आग लगाता है। कपाल क्रिया करना, कुछ समय ठहरने के बाद सभी जन, पंच लकड़ी देने, घर वापिस आने के पहले किसी जलाशय पर जाकर स्नान करने, ये सब

विधि हिन्दू पद्धति के माफिक ही पूर्ण की जाती हैं।

जैनों का प्राणान्त होने के वाद उसके शव को मरघट ले जाने के लिए दो लम्बी लकड़ियों पर ५ या ७ छोटी लकड़ियां बांधी जाती हैं, उस पर शव लिटाने के वाद स्त्री पर लाल तथा पुरुष पर सफेद कफन डाला जाता है, शव के आगे-आगे पुत्र या भाई अग्नि का वर्तन लेकर चलता है। (इसी अग्नि से अग्नि संस्कार किया जाता है) यह सव भारतीय परम्परा के मुताविक ही होता है।

कोई-कोई जैन खानदानों में मृतक के फूल (जली हुई हड्डियां) गंगा जी में विसर्जन करने जाते हैं, वहां से गंगाजल भी भर कर लाते हैं और गंगाजली खोलने की रस्म भी अदा करते हैं, ब्राह्मण भोजन भी समाज के साथ करवाते हैं तथा ब्राह्मण से पूजन भी करवाते हैं।

भारतवर्ष में प्राचीन प्रथा के अनुसार मनुष्य के पलंग पर प्राण निकलने को अच्छा नहीं मानते, उसका अन्त आया समझ उसे उसके कुटुम्बी जन पलंग से उठा कर भूमि पर लिटा देते हैं। यह क्रिया जैन व वैष्णवों में एक-सी ही अपनाई जाती है। मृत्यु के वाद मृतक को नहला कर वस्त्र वदलना, अर्थी सजाना, शव-यात्रा में वाजे बजाना, शमशान से वापसी पर घर के द्वार से अन्दर तव तक प्रवेश नहीं करने दिया जाता, जव तक घर वाले आकर पानी का छींटा न दे दें।

मृतक की भस्मी (खारी) अग्नि संस्कार के तीन दिन वाद शमशान भूमि से उठा ली जाती है, उसे तीसरा कहते हैं। वाद में दाह-स्थल को गाय के गोवर से लीप कर नमक छिड़कते हैं तथा कुछ खाने की सामग्री, पानी, व्यसन पदार्थ रख दिये जाते हैं।

इसके वाद समाज व मिलने वाले लोग मृतक के घर पहुंच

कर घरवालों को मन्दिर तथा दुकान पर ले जाते हैं, इसी को उठावना कहते हैं।

मृत्यु से १३ दिन के बाद तेरवी की जाती है, जिसमें अपने रिश्तेदारों के अलावा ब्राह्मणों को भी भोजन के लिए बुलाया जाता है, यथा शक्ति दान दक्षिणा भी दी जाती है।

इसी दिन समाज द्वारा पगड़ी का दस्तूर भी किया जाता है। इस दस्तूर द्वारा पुत्र व अन्य अधिकारी को मृतक की जायदाद का मालिक मान लिया जाता है।

कुछ समय तक मृतक की पत्नी भाई व पुत्र नीले पक्के रंग के वस्त्र पहनते हैं, गले में दुपट्टा भी डाले रहते हैं। सिर पर भी दुपट्टा व रूमाल बांध लिया करते हैं।

जैन धर्म यह अवश्य कहता है कि जिस रूढ़ि और परम्परा में विवेक और विचार को स्थान हो उसे कायम रखो और जो विवेक और विचार के विरुद्ध हो उसे छोड़ दो। उदाहरणार्थ जैन धर्म यह कहेगा कि मृतक शरीर को यदि फेंका या गाड़ दिया जाता है तो वह सड़ेगा और असंख्य सम्मूर्छिम जीव पैदा होंगे; परन्तु अग्नि में जला देने पर जीव पैदा नहीं होंगे। वह एक ही वार में भस्म हो जाएगा, अधिक हिंसा नहीं होगी।[1]

जैन व वैष्णव सम्प्रदाय में मृत्यु के समय भगवान का नाम लेना व सुनाने की समान प्रथा प्रचलित है। मृत्यु के समय का एक वार का भी नामोच्चारण अत्यन्त महत्वशाली माना गया है, प्राणी मोक्ष पद पा लेता है, ऐसा विश्वास है। इस कारण ही भारतीय प्रथा के अनुसार स्वयं से भगवान का नाम वार-वार लेने को कहा जाता है। इसके उपरान्त भी सगे सम्बन्धी मृत्यु को भाई समझ मृतक के कान से लगकर भगवान के नाम का वार-वार उच्चारण करते हैं, ताकि अन्त समय मृतक को भगवान का स्मरण बना रहे।

१–जीवन दर्शन–पृ० ६० ले० अमरमुनि

निष्कर्षतः

धर्म, दर्शन, विज्ञान, कला एवं समस्त जीवन के सार तत्व से समन्वित संस्कार सम्पन्न जीवन ही संस्कृति कहलाती है। जहां समस्त अन्तरंग विरोध स्वयं समाप्त हो जाते हैं और जीवन्त मानवीय समग्रता ही शेष रह जाती है। आने वाले लम्बे काल चक्र की अविश्रांत गतिशीलता को अपने में समेटे···।

शताब्दियों पूर्व बुक्का राय प्रथम (१३६८ के शिलालेख के अनुसार) ने एक आज्ञा प्रकाशित की थी :—'यह जैन दर्शन पहले की भांति पंचत्र महाशक और कलश का अधिकारी है। यदि कोई वैष्णव किसी भी प्रकार जैनियों को क्षति पहुंचाये, तो वैष्णवों को उसे वैष्णव धर्म की क्षति समझना चाहिए। वैष्णव लोग जगह-जगह इस बात की ताकीद के लिए शासन कायम करें। जब तक सूर्य और चन्द्र का अस्तित्व है, तब तक वैष्णव लोग जैन दर्शन की रक्षा करेंगे। वैष्णव व जैन एक ही हैं, उन्हें अलग-अलग नहीं समझना चाहिए। वैष्णवों और जैनों से जो कर लिया जाता है, उससे श्रवण वेल गोला के लिये रक्षकों की नियुक्ति की जाये और यह नियुक्ति वैष्णवों के द्वारा हो तथा उससे जो द्रव्य बचे, उससे जिनालयों की मरम्मत कराई जाये और उन पर चूना पोता जाये। इस प्रकार वे प्रतिवर्ष धन दान देने से चूकेंगे और यश तथा सम्मान प्राप्त करेंगे, जो

इस आज्ञा का उल्लंघन करेगा, वह राजद्रोही और सम्प्रदायद्रोही होगा।'[1]

कितनी गहरी सामन्जस्य भावना इसमें विद्यमान है कि व्यवस्था की दृष्टि से वैष्णव व जैन दोनों ही अपनी सम्पूर्ण आर्य संस्कृति के संदर्भ में इतने अभिन्न हैं कि उनके बीच किसी भी प्रकार का परस्पर असम्बद्धता की कल्पना अपराध है।

वर्ण व्यवस्था को ही लें तो यह निर्विवाद है कि मूल वर्ण व्यवस्था कर्म के आधार पर एक गुणात्मक विभाजन का परिणाम थी, जिसमें परिस्थितियों और प्रगति के समान्तर अन्य धर्मों का काल में चलकर समावेश होता गया और अनेक आचार्यों ने भारतीय संस्कृति के समसामयिक भौतिक चिंतन के अनुरूप अनेक दिशा-क्रम की स्थापना की तथा विभिन्न धार्मिक मतों और व्यावहारिक मान्यताओं के समग्र अन्तकर्म में सभी अन्तर्विरोधों और प्रायोगिक असहिष्णुता के विपरीत निःसंदेह एक स्वस्थ भारतीय समाज की संरचना, इस बात का प्रमाण है कि आज भी यदि कोई व्यक्ति वैष्णव धर्म छोड़कर जैन धर्म स्वीकार कर लेता है तो किसी प्रकार की कुदृष्टि का शिकार नहीं होता और न उसके प्रति किसी प्रकार के द्वेष की उत्पत्ति होती है। आज भी जैन व वैष्णवों के ऐसे सैंकड़ों कुटुम्ब मिल सकते हैं जो एक संगठन के अन्तर्गत भी अलग-अलग जैन व वैष्णव धर्म का पालन करते हैं। बहुत से ऐसे मन्दिर आज भी इस बात के जीवन्त साक्षी हैं कि वहां वैष्णव, शैव, आदि सभी आस्था विश्वास और श्रद्धापूर्वक उसे अपने तीर्थ मानते हैं।

---

१. जैन-धर्म–सिद्धांताचार्य कैलाश चन्द शास्त्री पृ० ६३

फिर 'हिन्दू' किसी जाति या धर्म का वाचक कभी नहीं रहा। संस्कृति के समग्र भौगोलिक परिवेश में सम्बोधन का पर्याय 'हिन्दू' को किसी भी विशिष्ठ साम्प्रदायिकता से सम्बद्ध करना नितांत दुराग्रहयुक्त और द्वेषपूर्ण तथा भ्रामक है।

भारत संस्कृति के धार्मिक एवम् सामाजिक परिप्रेक्ष्य के समस्त आयांम समन्वय की अपनी मूल व्यवस्था को प्रत्येक काल–क्रम में समान रूप से प्रभावित करते हैं। कहीं भी किसी तरह के मूल विभेद की बात हमें नहीं मिलती। फिर जैन हिन्दू हैं। भौगोलिक सन्दर्भों के अतिरिक्त अन्य अपने रूढ़िगत व्यवहार पक्षों में इस बात को निर्विवाद स्वीकार किया जा सकता है।

समस्त पुस्तक में मैंने इसी समन्वय की केन्द्रीय भावना को ध्यान में रखते हुये विद्वानों के समक्ष अपने इस प्रयास को प्रस्तुत करते हुए उनसे समस्त सहयोग को तथा उनकी प्रतिक्रियाओं को अपेक्षा करता हूँ।

संदर्भ-ग्रन्थ

१. साहित्य और संस्कृति : देवेन्द्र मुनि शास्त्री
२. हिन्दुत्व का व्यापक स्वरूप : हिन्दू संस्कृति अंक—कल्याण
३. भारतीय इतिहास : एक दृष्टि : डा० ज्योति प्रसाद जैन
४. पं० टोडरमल : व्यक्तित्व और कर्त्तव्य : डा० हुकुम चन्द भारिल्ल
५. प्राचीन भारतीय इतिहास : हेत सिंह बघेला
६. जीवन दर्शन : श्री अमर मुनि
७. सूक्ति त्रिवेणी : श्री अमर मुनि
८. कल्याण : हिन्दू संस्कृति अंक
९. समस्या का पत्थर : अाध्यात्म की छैनी : मुनि नथ मल जी
१०. भारतीय दर्शन : सतीश चन्द्र चट्टोपाध्याय एवं धीरेन्द्र —मोहन दत्त
११. हिन्दू धर्म : राम प्रसाद मित्र
१२. हिन्दू का स्वरूप : गुरूदत्त
१३. वैदिक आर्य सभ्यता : पं० रघुनन्दन शर्मा
१४. हिन्दुत्व का अनुशीलन : तनसुख राम गुप्त
१५. नवभारत, भोपाल : १४ जनवरी १९७४
१६. भारतीम समाज-जीवन और आदर्श : प्र० भाग : रवीन्द्र नाथ ठाकुर
१७. विजय-पताका : स्वामी श्री रामचन्द्र वीर महाराज
१८. राष्ट्र—धर्म: लखनऊ—तीर्थंन्कर : श्री कृष्ण वल्लभ द्विवेदी
१९. मेरा धर्म: केन्द्र और परिधि : आचार्य तुलसी

२०. अग्नि परीक्षा : चिन्तन का आव्हान् : दैनिक जागरण, कानपुर
२१. नवभारत टाइम्स, दिल्ली
२२. अग्नि परीक्षा : एक समीक्षात्मक अध्ययन
२३. हिन्दू समाज : सघटन और विघटन : डा० पुरुषोत्तम गणेश सहस्त्रबुद्धे
२४. हिन्दू धर्म का क ख : तनसुख राय गुप्त
२५. भारतीय इतिहास के छः स्वर्णिम पृष्ठ : तृतीय भाग
२६. हिन्दुत्व के पंचप्राण : विनायक दामोदर सावरकर
२७. कल्याण : अक्टूबर १६५४
२८. अग्नि परीक्षा–कृति और कसौटी : आशा विवेकी
२६. मंगल प्रवचन : विद्यानन्द मुनि
३०. अग्नि परीक्षा : एक समीक्षा : मुनि श्री रूपचन्द
३१. भगवान अरिष्ठनेमि और कर्मयोगी कृष्ण एक अनुशीलन : अथरचन्द नाहटा
३२. कादम्बिनी : अक्टूबर १६७२
३३. दिनमान : ३ जनवरी १६७१
३४. जन साहित्य का इतिहास
३५. दक्षिण भारत में जैन धर्म
३६. भारतीय इतिहास : एक दृष्टि : डा० ज्योति प्रसाद जन
३८. जैन शासन
३६. नवनीत : गणपति गाथा : जनेन्द्र वात्स्यायन
४०. अग्नि परीक्षा और विवाद : यशपाल जैन
४१. अग्नि परीक्षा : आचार्य तुलसी
४२. जैन रामायण : कविवर्य सूर्यमुनि जी महाराज
४३. सन्मति सन्देश : श्री अगर चन्द नाहटा
४४. चैतन्य मत और ब्रज साहित्य : प्रभुदयाल मित्तल

४५. जैन साहित्य और इतिहास
४६. भारतीय संस्कृति का इतिहास : भगवद्दत्त
४७. जैन धर्म : सिद्धान्ताचार्य श्री कैलाश चन्द्र शास्त्री
४८. ऋषभदेव : एक परिशीलन : देवेन्द्र मुनि शास्त्री
४९. भारत का इतिहास : गंगा शंकर मिश्र
५०. राष्ट्रधर्म (तीर्थंन्कर महावीर विशेषांक)
५१. साहित्य और संस्कृति : देवेन्द्र मुनि शास्त्री
५२. भारतीय दर्शन का इतिहास : डा० राधाकृष्णन
५३. चिन्तन की मनोभूमि : अमर मुनि
५४. सन्त वाणी अंक : कल्याण
५५. जैन वीरों का इतिहास और हमारा पतन : अयोध्या प्रसाद गोयलीय
५६. कल्याण : ७ जुलाई १९६७
५७. जैन शासन : श्री सुमेर चन्द जी दिवाकर, सिवनी
५८. कर्त्तव्य कौमुदी : पं० मुनि रत्न चन्द जी महाराज (जैन)
५९. पुनर्जन्म और जड़वाद—कल्याण : ९ मई १९६८
६०. परलोक और पुनर्जन्मांक—कल्याण
६१. माध्यमिक सम्पूर्ण इतिहास : भाग १
६२. भारतीय इतिहास का परिचय : पी० एस० त्रिपाठी
६३. चिन्तन की मनोभूमि : डा० देवराज, एम ए०, डी० लिट्
६४. हिन्दू विधि : श्रीमती उषा सक्सैना
६५. हिन्दू विधि : प्रो० विजय नारायण मणि त्रिपाठी
६६. यज्ञोपवीत और जैन धर्म : जैन साहित्य और इतिहास : नाथूराम जी प्रेमी
६७. कल्याण : श्री घनश्याम दास जी जालान
६८. वर्ण जाति और धर्म : पं० फूल चन्द जी सिद्धान्त शास्त्री
६९. विजय पताका : श्री रामचन्द्र जी शर्मा वीर